पद्य पुष्पाञ्जलि

चुनी हुई कविताओं का संग्रह

गोविन्दराम शर्म्मा

पद्य-पुष्पाञ्जलि

(हिन्दी के प्राचीन ग्यारह मुख्य कवियों की
चुनी हुई कविताओं का संग्रह)

संपादक

पं० गोविन्दराम शर्मा

शास्त्री, एम० ए०,
एफ़० सी० कालेज,
लाहौर ।

प्रकाशक

मोतीलाल बनारसीदास

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता,
गायघाट-बनारस ।

२॥)

विषय-सूची

भूमिका

कविता की परिभाषा विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। संस्कृत के आचार्यों में रसगंगाधरकार ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को कविता माना है। मम्मट के अनुसार निर्दोष, गुणपूर्ण, अलंकृत या कभी-कभी अलंकाररहित शब्द और अर्थ ही कविता है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी अपनी अपनी रुचि अथवा समझ के अनुसार कविता के अनेक लक्षण किए हैं। उनमें से यदि किसी ने जीवन की आलोचना को कविता कहा है तो कोई संगीतमय विचार को कविता मानते हैं। किसी के मत में कल्पना की अभिव्यक्ति ही कविता है। हम यह नहीं कह सकते कि कविता की उपर्युक्त परिभाषाएँ कहां तक ठीक हैं। वस्तुतः अपने-

कविता क्या है ?

---

१. "रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"—जगन्नाथ

२. "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"—विश्वनाथ

३. "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः कापि"—मम्मट

4. "Poetry is at bottom a criticism of life"—Mathew Arnold.

5. "Poetry we will call musical thought"— Carlyle.

6. "Poetry in a general sense may be defined as the expression of the imagination"—Shelley.

अपने दृष्टिकोण और पहुँच के अनुसार जिसने जिस रूप में कविता को देखा है, उसकी तदनुसार ही व्याख्या या परिभाषा भी कर दी है। कविता की परिभाषा में विभिन्नता का होना ही यह सिद्ध करता है कि कविता का क्षेत्र बहुत व्यापक है, उसे परिभाषा के संकुचित पाश में बाँधना असम्भव है। समालोचक आदिकाल से उसे देखते चले आए हैं किन्तु अभी तक वे "कविता क्या है?" इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर न दे सके और संभव है कभी दे भी नहीं सकेंगे। कविता का सम्बन्ध मानव-हृदय से है। हम हृदय में उसका अनुभव करते हैं किन्तु गूंगे के गुड़ के समान उस अनुभव को शब्दों में प्रकट नहीं कर सकते। विद्वानों ने अपनी परिभाषाओं के द्वारा कविता के अनन्त स्वरूप पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है और उनका यह प्रयत्न सराहना के योग्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता के स्वरूप का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है:—

"कविता वह साधन है जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।"

हमारी सम्मति में शुक्ल जी की यह परिभाषा कविता के स्वरूप पर बहुत कुछ प्रकाश डालने में समर्थ हुई है। शेष सृष्टि के साथ मनुष्य का घनिष्ट सम्बन्ध है, पर ज्यों-ज्यों उसके जीवन की जटिलता बढ़ती जाती है त्यों-त्यों सृष्टि के साथ उसके रागात्मक सम्बन्ध के टूटने की संभावना होने लगती है। ऐसी दशा में कविता ही इस सम्बन्ध को बनाए रखती है। वस्तुतः कविता हमारे हृदय से पशुत्व का अंश नष्ट करके अनिर्वचनीय आनन्द का संचार करती हुई ऐसी उदात्त भावना उत्पन्न करती है जिससे

सृष्टि के जड़ चेतन सभी पदार्थों के साथ हमारा तादात्म्य स्थापित हो जाता है। किसी काव्य में दीन-दुखियों की करुण कथा को पढ़कर हमारे हृदय में दया का स्रोत उमड़ आता है। कई दिनों की कठिन साधना के पश्चात् दो प्रेमियों के मधुर-मिलन प्रसंग में हम उनके आनन्द में हाथ बँटाने लगते हैं। प्रकृति के वक्षःस्थल पर अठखेलियां करती हुई नदियों का सुन्दर वर्णन हमारे हृदय की संकीर्णता को मिटा देता है। उपवन में खिले हुए फूल को देखकर हमारा हृदय प्रसन्नता से नाच उठता है और हम इस प्रकार कवि के शब्दों में उससे बातें करने लगते हैं :—

"अहो कुसुम कमनीय, कहो क्यों फूले नहीं समाते हो ?
कुछ विचित्र ही रंग दिखाते मंद मंद मुसकाते हो ॥
हम भी तो कुछ सुनें, किस लिये इतना है उल्लास तुम्हें।
बात बात में खिल खिलकर तुम किसकी हँसी उड़ाते हो ॥"

कविता का सम्बन्ध मानव-जीवन और मानव-जीवन की अनुभूतियों से है। वह कवि की मानसी सृष्टि है। मानव-जीवन के निरीक्षण से कवि के हृदय पर जो भावनाएँ अंकित होती हैं वह उन्हें कविता के रूप में अभिव्यक्त करता है। उस कविता में ऐसी शक्ति होती है कि वह अपने श्रोता या पाठक के हृदय में भी वही भावनाएँ उत्पन्न कर सकती है जो कवि के हृदय में आविर्भूत हुई थीं। वैसे तो भावनाएँ मनुष्यमात्र के हृदय में उत्पन्न होती रहती हैं किन्तु साधारण मनुष्यों में अपनी भावनाओं को प्रभावशाली सुन्दर कविता की भाषा में अभिव्यक्त करने की शक्ति नहीं होती। उनकी भावनाएँ उनके हृदय में उठकर वहीं विलीन हो जाती

कविता और कवि

है। वे चाहे कितनी ही उच्च क्यों न हों उनसे लोगों को आनन्द नहीं मिल सकता और न संसार का कल्याण ही हो सकता है। कवि की तो बात ही निराली है। वह इस संसार में रह कर भी नूतन सृष्टि की रचना करता है। वह अपनी भावनाओं को सुन्दर, सरस भाषा में मूर्तिमती बना कर जनता के हृदय में उथल-पुथल मचा देने की शक्ति रखता है। उसकी कल्पनाएँ अनूठी होती हैं। वह संसार की वस्तुओं को अपनी दिव्य आँखों से देखता है। वह आकाश में टिमटिमाते हुए तारों में यामिनी-कामिनी के कण्ठहार के बिखरे हुए मोतियों को देखता है, पक्षियों के कलरव में अनन्त का मधुर संगीत सुनता है और सरोवर के स्वच्छ, निर्मल जल में प्रकृति देवी का मुकुर ढूँढ़ता है। हम अपने जीवन में नित्य-प्रति कई दृश्य देखते हैं किन्तु हम शीघ्र ही उन्हें भूल जाते हैं। कवि उन्हीं साधारण दृश्यों को अपनी कविता में अत्यन्त रोचक और अमर बना देता है। हमें कई बार खेलते हुए बालकों के दृश्य देखने को मिलते हैं किन्तु उनमें हमें कोई विशेष आकर्षण नहीं दिखाई देता। दूसरी ओर जब हम अन्धे सूर के इन पदों को पढ़ते हैं—

"मैया मैं नहिं माखन खायौ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ॥"
"मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसों कहत मोल कौ लीन्हौं, तू जसुमति कब जायौ॥"

तब हम आनन्द-विभोर होकर आत्म-विस्मृत से हो जाते हैं। बालक कृष्ण की सजीव मूर्ति हमारी आँखों के सामने झूलने लगती है। वस्तुतः कवि की कविता में मानव-हृदय को स्पर्श करने और लोकोत्तर

आनन्द देने की शक्ति रहती है।

कवि जन-समाज में रहनेवाला प्राणी है। वह भी तत्कालीन सामाजिक जीवन और सांसारिक परिस्थिति के प्रभाव से बचा नहीं रह सकता। वह उन्हीं भावों को अपनी कविता में व्यक्त करता है जो मानवसमाज का अध्ययन करने से उसके हृदय-पटल पर अंकित हुए हों। किन्तु जिस प्रकार समाज के विचारों और भावों में समय समय पर परिवर्तन आता रहता है उसी प्रकार कवि की भावनाएँ भी सर्वदा एक जैसी नहीं रहतीं और तदनुसार उसकी कविता में भी सदा एकरूपता नहीं दिखाई देती। उसमें परिवर्तन आता रहता है। वह कभी शृंगार की मधुर मूर्ति का विधान करती है, कभी मानव-हृदय में उत्साह का संचार करती है और कभी अपने पाठक को शान्तरस में डुबा देती है। कवि की कविता समय की स्थिति के अनुसार बदलती रहती है। वह तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अवस्था से प्रभावित रहती है।

कविता में अनेकरूपता

हिन्दी-कविता में भी यह परिवर्तन समय समय पर आता रहा। जिस युग में जनता की जैसी चित्तवृत्ति रही, उस युग के कवियों ने भी वैसी ही कविता करके जनता की हृदय-पिपासा को शान्त किया।

हिन्दी कविता और उसके विभाग

हिन्दी-कविता पर भिन्न-भिन्न युगों की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक परिस्थितियों का पूर्ण प्रभाव पड़ा है। उसका इतिहास लगभग एक हजार वर्ष का इतिहास है। प्राचीन हिन्दी-कविता का विकास वैसे तो नवीं-दसवीं शताब्दी में होने लग गया था किन्तु उसके

क्रमबद्ध इतिहास का आरम्भ ग्यारहवीं शताब्दी से माना जाता है। ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर अब तक हिन्दी-कविता विविध परिस्थितियों से प्रभावित होती हुई आधुनिक रूप को प्राप्त हुई है। उसके क्रमिक विकास का अध्ययन करने से हमें यह पता लगता है कि किसी युग-विशेष के कवियों की कविताओं में कुछ ऐसी साधारण बातें हैं जो अन्य विषयों में विभिन्नता होने पर भी उनमें समान रूप से पाई जाती हैं। भिन्नता होने पर भी उनमें एक प्रकार की समानता दिखाई देती है। 'सूरसागर' और 'रामायण' में कृष्ण और राम दो भिन्न भिन्न व्यक्तियों के चरित्र का वर्णन होने पर भी भक्ति-भावना का साम्य है। इसी प्रकार केशव की 'कविप्रिया' और भूषण के 'शिवराज-भूषण' में क्रमशः शृंगार और वीररस सम्बन्धी दो भिन्न भिन्न विषयों का प्रतिपादन होने पर भी अलंकार-ग्रन्थ की दृष्टि से समानता है। इसी समानता को लक्ष्य रख कर इतिहासकारों ने हिन्दी-कविता को चार युगों में विभक्त किया है—वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिककाल।

हिन्दी-कविता का वीरगाथाकाल संवत् १०५० से १३७५ तक माना जाता है। यह हिन्दी-कविता का शैशव-काल है। यह वह समय है जब कि सारे देश में अशान्ति छाई हुई थी। पश्चिम से मुसल्मानों के आक्रमण होने लग पड़े थे और राजपूत राजाओं के छोटे-छोटे राज्य गृह-कलह के कारण जर्जरित हो चुके थे। राजपूत राजाओं को आक्रमणकारियों से समय समय पर युद्ध करना पड़ता था। कभी कभी किसी रूपवती स्त्री को अपनाने के लिए भी युद्ध छिड़ जाता था। इस अशान्ति के युग में उनके

वीरगाथा-काल

आश्रित कवियों ने उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए वीरगाथाओं की रचना की। इनमें वीररस की प्रधानता है, शृंगार का वर्णन कहीं कहीं गौणरूप से हुआ है। इस काल की वीरगाथाओं में सब से प्राचीन काव्य दलपति-विजय का 'खुमान रासो' है। इसमें सम्भवतः चित्तौड़ के दूसरे खुम्माण के युद्धों का वर्णन है। चन्दबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' तत्कालीन वीरकाव्यों में सब से अधिक महत्वपूर्ण है। चन्दबरदाई पृथ्वीराज के राजकवि थे। उन्हें हिन्दी का आदिकवि माना जाता है। उनका 'पृथ्वीराज रासो' एक बृहत् काव्य है, इसमें ६९ समय (सर्ग या अध्याय) हैं। इसमें पृथ्वीराज के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं और उनके युद्धों का वर्णन ओजस्विनी भाषा में किया गया है, इस युग की अन्य रचनाओं में नरपति नाल्ह कवि का 'वीसलदेव रासो' विशेष उल्लेखनीय है। उस समय की सभी रचनाओं में प्राचीन काव्यभाषा का प्रयोग हुआ है, जिसे पिंगल कहा जाता है। वीरगाथाकाल के सम्पूर्ण साहित्य का निर्माण राजस्थान में हुआ, इसलिये उसकी भाषा पर राजस्थान की व्यावहारिक भाषा 'डिंगल' का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वीररस का परिपाक इन काव्यों में अच्छा हुआ है।

जब मुसलमानों से बराबर युद्ध करने पर भी राजपूतों को सफलता न मिली और देश में मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गया तब हिन्दू-जाति निराशा के गहरे समुद्र में डूब कर भगवान् को याद करने लगी।

भक्तिकाल

राम और कृष्ण के भक्त-कवि अपनी कविताओं के द्वारा जनता के दुखी हृदय को शान्ति पहुँचाने लगे। एक ओर निर्गुण-पन्थी सन्त कवियों ने संसार की निस्सारता तथा

कर जनता को सब कुछ भूल कर निर्गुण ब्रह्म की ओर ध्यान लगाने का उपदेश दिया तो दूसरी ओर सूफ़ी कवियों ने अपनी गाथाओं में हिन्दू-हृदय और मुसलमान-हृदय का समन्वय करने का प्रयत्न किया। इधर रामभक्त कवियों ने मर्यादापुरुषोत्तम राम की भक्ति की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया तो उधर कृष्ण के भक्तों ने ब्रजविहारी कृष्ण के जीवन को अपनाकर प्रेम और आनन्द का मार्ग दिखाया। इन भक्त कवियों का काल ही हिन्दी-कविता के इतिहास में भक्तिकाल कहलाया, जो संवत् १३७५ से १७०० तक माना जाता है। इस काल में हिन्दी-कविता उन्नति की चरम सीमा को प्राप्त हुई। कबीर जायसी, तुलसी और सूर इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं। कबीर ने हिन्दू-मुसलमानों के वैर भाव को दूर करने और समाज में प्रचलित ढोंग और पापाचार को मिटाने की चेष्टा की। जायसी ने 'पद्मावत' में ईश्वर से मिलाने वाले प्रेमतत्त्व की सुन्दर व्याख्या की। आगे चलकर तुलसी और सूर ने ईश्वर का सगुण रूप राम और कृष्ण के रूप में जनसाधारण के समक्ष रखा। राम और कृष्ण को लक्ष्य रख कर इन भक्तकवियों ने कविता की जो सरिता बहाई उसने जनता के शुष्क हृदय को फिर से हरा-भरा बना दिया। मर्यादापुरुषोत्तम राम का जीवन कठिनाइयों से पूर्ण था, इसलिए उसको अपनाने वाले कवि हिन्दी-साहित्य में इने-गिने हैं। किन्तु लीला-पुरुषोत्तम कृष्ण का जीवन हास-विलास और आनन्द से परिपूर्ण होने के कारण अनेक कवियों को आकृष्ट करने में सफल हुआ। राम-काव्य में लोक-संग्रह का भाव है और कृष्ण-काव्य में व्यक्तिगत साधना की प्रधानता है। यह भक्तिकाल हिन्दी-कविता का स्वर्णयुग है। इसी काल में 'रामचरित-मानस' और

'सूरसागर' जैसे उच्चकोटि के काव्य लिखे गये, भाषा परिमार्जित हुई और कविता में स्वाभाविकता, सरसता और तन्मयता आदि गुणों का विकास हुआ।

भक्तिकाल में हिन्दी-कविता उन्नति के शिखर पर पहुँच चुकी थी। अब कुछ कवियों का ध्यान काव्यांगों के निरूपण की ओर गया। संस्कृत के अलंकार-ग्रन्थों के आधार पर हिन्दी में भी अलंकारों और

रीतिकाल

रसों का विवेचन प्रारम्भ हुआ। केशव, मतिराम, भूषण, देव आदि कवियों ने आचार्य और कवि दोनों का कार्य हाथ में लिया और अपने काव्यों को लक्षणग्रन्थ का रूप दिया। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में लगभग दो सौ वर्ष तक रीतिग्रन्थों की रचना होती रही। यही काल हिन्दी-कविता का रीतिकाल है, जो संवत् १७०० से १९०० तक माना जाता है। इस काल में सैकड़ों काव्यों की रचना हुई किन्तु कविता का वास्तविक विकास इस काल में न हो सका। कविता करते समय कवियों का ध्यान रसों या अलंकारों के लक्षणों की ओर बना रहने के कारण उनकी कविता में कृत्रिमता आगई। इस युग के अधिकांश कवि दरबारी कवि थे। उनकी कविता का विकास 'स्वान्तःसुखाय' नहीं, वरन् 'स्वामिनः सुखाय' हुआ। अपने आश्रयदाताओं की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा करना ही उन्हें अभीष्ट था। रीतिकाल की कविता में शृंगाररस की ही प्रधानता रही। भक्तिकालीन कृष्ण-भक्त कवियों ने लौकिक शृंगार के लिए पहले ही मार्ग खोल दिया था। अब इस काल के कवियों ने राधा और कृष्ण के नाम पर अपने आश्रयदाताओं की शृंगार पिपासा को शान्त करने के लिए

शृंगार की वासनामयी कलुषित धारा बहा दी। नायक-नायिकाओं के हाव-भावों के चित्र खींचे गये और ऋतुवर्णन की प्रथा अपनाई गई। कविता में भाव और रस को गौणता और अलंकारों को प्रधानता दी जाने लगी। इन कवियों ने कविता-कामिनी के शरीर को विविध अलंकारों से सजाया, उसकी भावभंगी के चित्र खींचे किन्तु उसकी आत्मा की ओर ध्यान नहीं दिया। भाषा की शुद्धता की ओर भी इन कवियों का ध्यान बहुत कम गया। शब्दों को तोड़ मरोड़ कर मनमाना रूप दिया गया। इस प्रकार रीतिकालीन कविता अपने ऊंचे आदर्श से गिर गई। इस काल की कविता पर मुसलमानों की विलासिता का पूरा प्रभाव पड़ा है। वासनाजन्य शृंगार की प्रचुरता होने पर उसमें रमणीयता है। समाज के उपयोगी न होने पर भी वह कविता अवश्य है। इस काल के कवि सर्वथा निन्दनीय नहीं, उन्होंने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कविता को जीवित रखने का कार्य किया है।

आधुनिक काल

हिन्दी-कविता का आधुनिक काल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से प्रारम्भ होता है। रीतिकाल में कविता का पतन हो चुका था, अब वह फिर उत्थान की ओर अग्रसर हुई। गद्य के क्षेत्र में खड़ी-बोली के विकास के साथ साथ कविता के क्षेत्र में भी खड़ीबोली को स्थान मिलने लगा। राष्ट्रीय भावनाओं को कविता में स्थान मिला और भक्तिकाल की आध्यात्मिकता आधुनिक रहस्यवाद या छायावाद के रूप में पुनः प्रस्फुटित हुई। आधुनिक हिन्दी-कविता विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित हो रही है। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पन्त और सूर्यकान्त

त्रिपाठी निराला आधुनिक काल के प्रसिद्ध कवि हैं।

साधारणतया हिन्दी-कविता को प्राचीन और अर्वाचीन इन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्राचीन हिन्दी कविता में वीरगाथाकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल की रचनाएँ सम्मिलित हैं।

प्राचीन हिन्दी कविता की विशेषताएँ

प्राचीन हिन्दी कविता में वीर गाथा काल, भक्तिकाल और रीतिकाल में क्रमशः वीररस, भक्ति और शृंगार की प्रधानता रही। भक्तिकाल से रीतिकाल तक वह स्वाभाविकता से कृत्रिमता की ओर और आध्यात्मिकता से सांसारिकता की ओर अग्रसर हुई। वीरगाथाओं में प्राचीन काव्य भाषा को ही स्थान मिला किन्तु धीरे धीरे ब्रजभाषा ही काव्यभाषा बन गई। जायसी ने 'पद्मावत' में और तुलसी ने 'रामचरितमानस' में अवधी को ही अपनाया किन्तु आगे चलकर सभी कवियों ने ब्रजभाषा में ही कविता की। उसमें माधुर्य होने के कारण प्राचीन हिन्दी-कविता में उसे महत्वपूर्ण स्थान मिला। प्राचीन हिन्दी-कविता में भिन्न भिन्न युगों में विविध काव्यशैलियाँ प्रचलित रहीं। वीरगाथाओं में छप्पय-पद्धति को विशेष स्थान मिला। सन्तकवियों की वाणी अधिकतर दोहों में प्रस्फुटित हुई। 'पद्मावत' और 'रामचरित-मानस' जैसे प्रबन्ध-काव्यों में दोहे-चौपाई वाली शैली को स्थान मिला। कृष्ण के भक्तकवियों की मुक्तक रचना पदों के रूप में विकसित हुई और रीतिकाल की कविता कवित्तों, सवैयों और दोहों में हमारे सम्मुख आई।

इस संग्रह में हिन्दी के प्राचीन ग्यारह कवियों की कविताएँ चुनी गई हैं। सन्तकवियों में से (१) कबीर और (२) सुन्दरदास, प्रेमगाथाकार

प्रस्तुत संग्रह

मुसलमान कवियों में से (३) जायसी, भक्तकवियों में से (४) सूरदास और (५) तुलसीदास, तथा रीतिकाल के कवियों में से (६) केशव, (७) बिहारी, (८) भूषण, (९) मतिराम, (१०) पद्माकर और (११) दीनदयाल गिरि लिए गये हैं। वीरगाथाकाल के कवियों की कविताएँ साधारण विद्यार्थियों के लिए कठिन होने के कारण इस संग्रह में नहीं दी गईं। सन्तकवियों में सुन्दरदास की ओर अब तक विद्वानों का ध्यान बहुत कम गया है। वस्तुतः सरसता, सरलता और भाषा सौष्ठव की दृष्टि से सन्तकवियों में सुन्दरदास का स्थान महत्वपूर्ण है। इस संकलन में विद्यार्थियों का ध्यान उनकी महत्ता की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न भी किया गया है। कालक्रम के अनुसार सुन्दरदास का नाम केशव के पश्चात् आना चाहिए था किन्तु कबीर के अनुयायी होने के कारण उनकी कविता को कबीर के अनन्तर ही स्थान दिया गया है। अन्य कवियों की रचनाओं से भी ऐसी कविताएँ चुनी गई हैं जो छात्रों के ध्यान में अब तक कम आई हैं और साथ ही जो उनके लेखकों की काव्य-कला पर प्रकाश डालने में पूर्णतया समर्थ हैं। रीति काल के कवियों में विशेष स्थान रखने पर भी मतिराम को, संभवतः शृंगारी कवि होने के कारण छोड़ दिया जाता है। यहां उनके उत्कट शृंगार-सम्बन्धी पद्यों को छोड़ कर अन्य उत्कृष्ट कविताएँ ली गई हैं। रीतिकाल के अन्तिम कवि बाबा दीनदयाल गिरि को भी इस संग्रह में स्थान दिया गया है। उनकी कविता में पाठकों को रीतिकाल की समाप्ति और आधुनिक कविता के उदय की झाँकी देखने को मिलेगी।

वर्णनात्मक कविताओं को इस संकलन में विशेष स्थान दिया गया

है। उनके अध्ययन में छात्रों को विशेष आनन्द मिलेगा और वे उनके लेखकों की रचनाओं के विषय में और भी जानकारी प्राप्त करने में प्रवृत्त होंगे। प्रत्येक कवि की कविता के आरंभ में कवि का परिचय देकर उसकी विशेषताओं पर कुछ अधिक प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। इससे पाठकों को भिन्न-भिन्न कवियों की कविता को समझने में सहायता मिलेगी। कविताओं का चुनाव यथाशक्ति कवियों की रचनाओं के प्रामाणिक संस्करणों से हुआ है और शुद्ध पाठ की ओर विशेष ध्यान रखा गया है। संग्रह के अन्त में कठिन शब्दों के अर्थ भी छात्रों की सुविधा के लिए दिये गये हैं।

इस संग्रह के सम्पादन में जिन पुस्तकों से सहायता ली गई है, उनके लेखकों के प्रति हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

सम्पादक

महात्मा कबीरदास

महात्मा कबीर का जन्म-काल ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार संवत् १४५६ माना जाता है। कुछ लोगों का कथन है कि स्वामी रामानन्द ने एक विधवा ब्राह्मणी को भूल से पुत्रवती होने का आशिर्वाद दे दिया। उसी आशीर्वाद के प्रभाव से उस विधवा का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। लोकापवाद के भय से उसने जन्म लेते ही अपने पुत्र को काशी में लहरतारा के पास त्याग दिया। उसी मार्ग से नीरू नामक एक मुसलमान जुलाहा अपनी स्त्री नीमा के साथ गुज़रा और उस नवजात शिशु को उठाकर घर ले गया। उस दयामय दम्पति ने उस बालक को ईश्वर की देन समझ कर औरस पुत्र की भाँति पाला। वही बालक आगे चलकर कबीर कहलाया।

एक मुसलमान परिवार में पालन-पोषण होने के कारण कुछ लोग इन्हें मुसलमान मानते हैं और एक हिन्दू-स्त्री से जन्म लेने तथा स्वामी रामानन्द के शिष्य होने के कारण कुछ विद्वान् इन्हें हिन्दू समझते हैं। मुसलमान पालकों के यहाँ रहने पर भी इनका झुकाव विशेषकर हिन्दू-धर्म की ओर ही रहा। बचपन से ही कबीर में हिन्दू-भाव से भक्ति करने की प्रवृत्ति लक्षित होती थी। स्वामी रामानन्द का यश उस समय काशी में फैला हुआ था। कबीर ने भी उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया और उनसे राम नाम की दीक्षा ली। मुसलमान लोग इन्हे सूफ़ी फकीर

शेख तकी का शिष्य मानते हैं। संभव है इन पर शेख तकी का प्रभाव पड़ा हो किन्तु उन्हें इनका गुरु मानना उचित नहीं। कबीर ने स्वयं कहा भी है:--

"काशी में हम प्रगट भये हैं रामानन्द चेताए।"

कुछ लोगों का कहना है कि कबीर का विवाह लोई नामक स्त्री के साथ हुआ था और उससे उनका कमाल नामक एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। इनकी मृत्यु मगहर में संवत् १५७५ के लगभग मानी जाती है।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। उन्होंने साधु सन्तों के सत्संग में रह कर ज्ञान प्राप्त किया था। इधर उधर घूमते हुए वे लोगों को उपदेश दिया करते थे। उनकी वाणी का संग्रह बीजक के नाम से प्रसिद्ध है, जिसके तीन भाग किए गए हैं--रमैनी, सबद और साखी।

जिस समय महात्मा कबीर हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्र में उतरे उस समय सारे भारत में राजनैतिक अशान्ति छाई हुई थी। हिन्दू और मुसलमान परस्पर लड़ा करते थे। धर्म के वास्तविक रूप को दोनों भूल बैठे थे। समाज में अनेक कुरीतियां फैली हुई थीं। मूर्तिपूजा और सगुणोपासना का पवित्र रूप कलुषित होने लग गया था। इन परिस्थितियों का समाधान करने के लिये ही महात्मा कबीर का प्रादुर्भाव हुआ। वे यद्यपि रामानन्द के शिष्य थे और उन्होंने रामानन्द से सगुण राम की दीक्षा ली थी, तो भी आगे चल कर कबीर के राम रामानन्द के राम से भिन्न हो गये। कबीर ने राम को दाशरथि राम न मानकर परब्रह्म का प्रतीक स्वीकार किया। हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक विरोध को दूर करने के लिए उन्होंने अपने एकेश्वरवाद का प्रचार किया। राम और रहीम की एकता द्वारा

धार्मिक क्षेत्र को परिमार्जित करना उनके जीवन का मुख्य ध्येय था। इसीलिये उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रचलित कुप्रथाओं की स्पष्ट शब्दों में निन्दा की। जहां एक ओर उन्होंने मूर्तिपूजा की निन्दा की है वहां नमाज को भी अनावश्यक बतलाया है। जैसे:--

"दुनियां कैसी बावरी, पत्थर पूजन जाय।
घर की चकिया कोइ न पूजे, जिसका पीसा खाय॥"

इसी प्रकार उन्होंने स्थान स्थान पर मस्जिद में नमाज का विरोध भी किया है :—

"काँकर पाथर जोरि कै मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥"

कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के अनुयायियों को कड़े और कहीं कहीं अप्रिय शब्दों में फटकारा और इस बात पर जोर दिया कि बाह्याडम्बर को ही धर्म मानना उचित नहीं, अपि तु मन को पवित्र रखना, शुद्ध हृदय से ईश्वर का स्मरण करना और विषयों में लिप्त न होना ही वास्तविक धर्म है।

कबीर ने सीधी-सादी बोलचाल की भाषा में अपनी वाणी का सन्देश उन लोगों तक पहुँचाया जिन्हें समाज में अछूत, अशिक्षित और उपासना का अनधिकारी समझा जाता था। इसीलिए कबीर की वाणी का प्रभाव साधारण, अशिक्षित लोगों पर विशेष पड़ा। वे स्पष्टवादी और सत्यप्रिय जीव थे। उनकी वाणी में कर्कशता थी, इसीलिए सार-गर्भित होने पर भी वह तत्कालीन शिक्षित समाज के हृदय पर अधिक

प्रभाव न डाल सकी। वे समदर्शी थे। उनके लिये भंगी, चमार, ब्राह्मण, वैश्य सब एक थे।

महात्मा कबीर ने ही हिन्दी में रहस्यात्मक काव्य-प्रणाली का सूत्र-पात किया। उनके रहस्यवाद पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद और मुसल्मान सन्तों के सूफ़ीमत का विशेष प्रभाव पड़ा है। अद्वैतवाद के सिद्धान्तों के अनुसार आत्मा और परमात्मा के बीच माया ने पर्दा डाल रखा है। ज्ञान के द्वारा इस माया से छुटकारा पाकर आत्मा से एकता स्थापित कर सकती है। ज्ञान के द्वारा माया के आवरण के छिन्न हो जाने पर आत्मा और परमात्मा की एकता का वर्णन कबीर ने इस प्रकार किया है :—

"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यह तथ कथो गियानी॥"

कबीर के रहस्यवाद पर अद्वैतवाद का गहरा प्रभाव पड़ा है। उन्होंने गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्तों को बड़ी रोचक और प्रभावशाली भाषा में हमारे सम्मुख उपस्थित किया है। उनके रहस्यवाद का दूसरा आधार सूफ़ीमत है। इस मत के अनुसार भी 'बन्दे' और 'खुदा' का एकीकरण हो सकता है। किन्तु इस मत में माया का कोई स्थान नहीं। अद्वैतवाद में ज्ञान की प्रधानता है किन्तु सूफ़ीमत में प्रेम को ही एकता का मुख्य साधन माना जाता है। कबीर ने सूफ़ीमत से इस प्रेम-तत्त्व को लेकर भी अपने रहस्यवाद को सरस और हृदयग्राही बनाया है। उन्होंने जीवात्मा को परमात्मा के विरह में उसी प्रकार व्याकुल बताया है जिस प्रकार अपने पति के वियोग में कोई स्त्री व्याकुल रहती है। जैसे :—

"कब देखूँ मेरे राम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरो देही ॥
हूँ तेरा पन्थ निहारूँ स्वामी,
कबरे मिलहुगे अंतरजामी ॥"

इस प्रेम तत्व के प्रभाव से कबीर की अक्खड़ भाषा भी सरस हो गई है।

कबीर का रहस्यवाद ऊँचे धार्मिक विचारों और दार्शनिक गूढ़ तत्वों की मर्मस्पर्शी व्याख्या है। उसमें प्राणीमात्र के कल्याण की भावना है और आध्यात्मिक उन्नति का पवित्र सन्देश है।

कबीर की भाषा शुद्ध साहित्यिक भाषा नहीं है। वे पढ़े-लिखे न थे। उन्होंने किसी भाषा पर अधिकार प्राप्त नहीं किया था। उन्होंने अपनी भाषा को पूरबी बोली कहा है किन्तु वास्तव में वह ब्रज, अवधी और खड़ी बोली का एक अपूर्व संमिश्रण है। उसमें पञ्जाबी, राजस्थानी, बंगाली और अरबी-फारसी के भी अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः भाषा की शुद्धता की ओर उनका ध्यान था ही नहीं। कहीं कहीं उनकी भाषा उनके भावों को प्रगट करने में असमर्थ सी दिखाई देती है। उन्होंने छन्द-शास्त्र और व्याकरण के नियमों की ओर भ कोई ध्यान नहीं दिया। इसी प्रकार अलंकारशास्त्र का भी उन्हें कोई ज्ञान न था। यह सब कुछ होने पर भी उनकी वाणी भावपूर्ण और रहस्यमयी है। कहीं कहीं उनके पदों में रूपक, उपमा और अन्योक्ति आदि अलङ्कारों का स्वाभाविक चमत्कार पाया जाता है।

महात्मा कबीर की प्रतिभा बहुत प्रखर थी। भाषा की शुद्धता और बाह्य सौन्दर्य के न होने पर भी उनके पदों में भावमयता और सरसता है। दार्शनिक सिद्धान्तों के निरूपण में वे बड़े कुशल थे। इसीलिये उन्हें हिन्दी साहित्य के सन्त-कवियों में सब से ऊंचा स्थान दिया जाता है।

दोहावली

जनम मरन से रहित है मेरा साहेब सोय।
बलिहारी वहि पीव की जिन सिरजा सब कोय ॥ १ ॥
एक कहौं तो है नहीं दोय कहौं तो गारि।
है जैसा तैसा रहै कहै कबीर विचारि ॥ २ ॥
साहेब सों सब होत हैं बंदे तें कछु नाहिं।
राई ते पर्वत करे पर्वत राई माहिं ॥ ३ ॥
जाको राखै साँइयाँ मार न सक्कै कोय।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय ॥ ४ ॥
जा कारन जग ढूँढ़िया सो तो घट ही माहिं।
परदा दिया भरम का ता तें सूझै नाहिं ॥ ५ ॥
ज्यों तिल माहीं तेल है ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साँई तुज्झ में जागि सकै तो जागि ॥ ६ ॥
सब्द सब्द बहु अंतरा सार सब्द चित देय।
जा सब्दे साहेब मिलै सोइ सब्द गहि लेय ॥ ७ ॥
एक सब्द सुखरास है एक सब्द दुखरास।
एक सब्द बंधन कटै एक सब्द गलफाँस ॥ ८ ॥
सब्द बराबर धन नहीं जो कोइ जानै बोल।
हीरा तो दामों मिलै सब्दहिं मोल न तोल ॥ ९ ॥

जंत्र मंत्र सब झूठ है मत भरमो जग कोय।
सार सब्द जाने बिना कागा हंस न होय॥ १०॥

आदि नाम पारस अहै मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया छूटा बंधन मोह॥ ११॥

ज्ञान-दीप परकास करि भीतर भवन जराय।
तहाँ सुमिर सतनाम को सहज समाधि लगाय॥ १२॥

जिन पावन भुइँ बहु फिरे घूमे देस बिदेस।
पिया मिलन जब होइया आँगन भया बिदेस॥ १३॥

उनमुनि सों मन लागिया गगनहिं पहुँचा जाय।
चाँद बिहूना चाँदना अलख निरंजन राय॥ १४॥

गगन गरजि बरसै अमी बादल गहिर गँभीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी भींजै दास कबीर॥ १५॥

पानी ही ते हिम भया हिम ही गया बिलाय।
कबिरा जो था सोइ भया अब कछु कहा न जाय॥ १६॥

सुन्न सरोवर मीन मन नीर तीर सब देव।
सुधा सिंधु सुख बिलस ही बिरला जाने भेव॥ १७॥

ज्यों गूँगे के सैन को गूँगा ही पहचान।
त्यों ज्ञानी के सुक्ख को ज्ञानी होय सो जान॥ १८॥

कागद लिखै सो कागदी की ब्योहारी जीव।
आतम दृष्टि कहाँ लिखै जित देखै तित पीव॥ १९॥

लिखा-लिखी की है नहीं देखा-देखी बात।
दुलहा दुलहिन मिल गए फीकी पड़ी बरात॥ २०॥

साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय॥ २१॥
औगुन को तो ना गहै गुन ही को ले बीन।
घट घट मँहकै मधुप ज्यों परमातम ले चीन॥ २२॥
छीर रूप सत नाम है नीर रूप व्यवहार।
हंस रूप कोइ साध है तत का छाननहार॥ २३॥
जब लग नाता जगत का तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़ै हरि भजै भक्त कहावै सोय॥ २४॥
देखा देखी भक्ति का कबहूँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े यों छाँड़िसी ज्यों कँचुली भुजंग॥ २५॥
खेत बिगारयो खरतुआ सभा बिगारी कूर।
भक्ति बिगारी लालची ज्यों केसर में धूर॥ २६॥
कामी क्रोधी लालची इन तें भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा जाति बरन कुल खोय॥ २७॥
जल ज्यों प्यारा माछरी लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका भक्त पियारा नाम॥ २८॥
भक्ति गेंद-चौगान की भावै कोइ लै जाय।
कह कबीर कछु भेद नहीं कहा रंक कह राय॥ २९॥
यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीर उतारै भुइं धरै तब पैठे घर माहिं॥ ३०॥
उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला तिन का तिन के पास॥ ३१॥

कबिरा हम गुरु रस पिया बाकी रही न छाक।
पाका कलस कुम्हार का बहुरि न चढ़सी चाक ॥ ३२ ॥
मिलना जग में कठिन है मिलि बिछुड़ो जनि कोय।
बिछुड़ा सज्जन तेहि मिलै जिन माथे मनि होय ॥ ३३ ॥
नैनों की करि कोठरी पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के पिय को लिया रिझाय ॥ ३४ ॥
अगिनि आँच सहना सुगम सुगम खड़्ग की धार।
नेह निभावन एकरस महाकठिन ब्योहार ॥ ३५ ॥
हीरा तहां न खोलिए जहँ खोटी है हाट।
कस करि बाँधो गाठरी उठ कर चालो बाट ॥ ३६ ॥
हंसा बगुला एक सा मानसरोवर माहि।
बगा ढँढोरे माछरी हंसा मोती खाहिं ॥ ३७ ॥
चन्दन गया बिदेसड़े सब कोइ कहै पलास।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया त्यों त्यों [illegible]की बास ॥ ३८ ॥
बलिहारी तिहि पुरुष की परचित परखनहार।
साईं दीन्हों खाँड़ को खारी बूझ गंवार ॥ ३९ ॥
ऐसा कोई ना मिला जासे रहिये लाग।
सब जग जलता देखिया अपनी अपनी आग ॥ ४० ॥
सर्पहि दूध पिलाइए सोई विष है जाय।
ऐसा कोई ना मिला आपे ही बिष खाय ॥ ४१ ॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठि।
मैं बपुरा बूडन डरा रहा किनारे बैठि ॥ ४२ ॥

कथनी मीठी खाँड़ सी करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करै विष से अमृत होय॥ ४३॥
करनी बिन कथनी कथै अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूँकत फिरै सुनी सुनाई बात॥ ४४॥
पानी मिलै न आप को औरन बकसत छीर।
आपन मन निसचल नहीं और बँधावत धीर॥ ४५॥
डुबकी मारी समुँद में निकसा जाय अकास।
गगन मँडल में घर किया हीरा पाया दास॥ ४६॥
खरी कसौटी नाम की खोटा टिकै न कोय।
नाम कसौटी सो टिकै जीवत मिरतक होय॥ ४७॥
जा मरने से जग डरै मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं पूरन परमानन्द॥ ४८॥
गगन दमामा बाजिया पड़त निशाने घाव।
खेत पुकारै शूरमा अब लड़ने का दाँव॥ ४९॥
सिर राखे सिर जात है सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की कटि उँजियारा होय॥ ५०॥
तीर तुपक से जो लड़ै सो तो सूर न होय।
माया तजि भक्ती करै सूर कहावै सोय॥ ५१॥
पतिबरता मैली भली काली कुचित कुरूप।
पतिबरता के रूप पर वारौं कोटि सरूप॥ ५२॥
नैनों अन्तर आवतू नैन झाँपि तोहि लेंव।
ना मैं देखौं और को ना तोहिं देखन देंव॥ ५३॥

कबिरा सीप समुद्र की रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै स्वाति बूँद की आस॥ ५४॥
पपिहा का पन देख कर धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा तऊ न बोरी चंच॥ ५५॥
सती विचारी सत किया काँटो सेज बिछाय।
लै सूती पिय आपना चहुँ दिस अगिन लगाय॥ ५६॥
ताकी पूरी क्यों परै गुरु न लखाई बाट।
ताको बेड़ा बूड़ि है फिर फिर अवघट घाट॥ ५७॥
साध बड़े परमारथी घन ज्यों बरसैं आय।
तपन बुझावैं और की अपनो पारस लाय॥ ५८॥
जाति न पूछो साध की पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तरवार का पड़ा रहन दो म्यान॥ ५९॥
संत न छोड़े संतई कोटिक मिले असन्त।
मलया भुवँगहि बेधिया सीतलता न तजन्त॥ ६०॥
झूँठे सुख को सुख कहैं मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद॥ ६१॥
दुर्लभ मानुष जनम है देह न बारम्बार।
तरवर ज्यों पत्ता झड़ै बहुरि न लागै डार॥ ६२॥
इक दिन ऐसा होयगा कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै तन की नारी जाहिं॥ ६३॥

बरनहुँ कौन रूप और रेखा । दूसर कौन आय जो देखा ॥
औ ओंकार आदि नहिं वेदा । ताकर कहौं कौन कुल भेदा ॥
नहिं तारागन नहिं रवि चंदा । नहिं कछु होत पिता के बिंदा ॥
नहिं जल नहिं थल नहिं थिर पवना । को धर नाम हुकुम को बरना ॥
नहिं कछु होत दिवस अरु राती । ताकर कहहुँ कौन कुल जाती ॥

शून्य सहज मन सुरति ते प्रगट भई एक ज्योति ।
बलिहारी ता पुरुख छबि निरालंब जो होति ॥ १ ॥

राम गुण न्यारो न्यारो ।
अबुझा लोग कहाँ लौं बूझैं बूझनहार बिचारो ॥
केते रामचन्द्र तपसी से जिन जग यह बिरमाया ।
केते कान्ह भए मुरलीधर तिन भी अन्त न पाया ॥
मच्छ कच्छ बाराह स्वरूपी बामन नाम धराया ।
केते बौध भये निकलंकी तिन भी अन्त न पाया ॥
केतिक सिध साधक संन्यासी जिन बन बास बसाया ।
केते मुनिजन गोरख कहिए तिन भी अन्त न पाया ॥
जाकी गति ब्रह्मै नहिं पाए शिव सनकादिक हारे ।
ताके गुन नर कैसे पैहो कहै कबीर पुकारे ॥ २ ॥

अवधू कुदरत की गति न्यारी ।
रंक निवाज करे वह राजा भूपति करै भिखारी ॥
ये ते लवँगहिं फल नहिं लागै चंदन फूल न फूले ।
मच्छ शिकारी रमे जंगल में सिंह समुद्रहि झूले ॥

रेंडा रूख भया मलयागिर चहुँदिसि फूटी बासा।
तीन लोक ब्रह्मांड खंड में देखे अंध तमासा॥
पंगुल मेरु सुमेरु उलंघै त्रिभुवन मुक्ता डोलै।
गूँगा ज्ञान विज्ञान प्रकासै अनहद बाणी बोलै॥
बाँधि अकाश पताल पठावै सेस स्वरग पर राजै।
कहै कबीर राम है राजा जो कछु करै सो छाजै॥ ३॥

रस गगन गुफा में अजर झरै।
बिना बाजा झनकार उठे जहँ समुझि परै जब ध्यान धरै॥
बिना ताल जँह जँह कँवल फुलाने तेहि चढ़ि हंसा केलि करै।
बिन चंदा उँजियारी दरसै जहँ तहँ हंसा नजर परै॥
दसवें द्वारे ताड़ी लागी अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहि आवै काम क्रोध मद लोभ जरै॥
जुगुन जुगुन की तृषा बुझानी करम भरम अघ व्याधि टरै।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो अमर होय कबहूँ न मरै॥ ४॥

ज्ञान का गेंद कर सुरति का दंड कर
खेल चौगान मैदान माहीं।
जगत का भरमना छोड़ दे बालके
आय जा भेख भगवंत पाहीं॥
भेख भगवंत की सेस महिमा करै
सेस के सीस पर चरन डारै।
काम दल जीति कै कँवलदल सोधिकै
ब्रह्म को बेधि कै क्रोध मारै॥

पद्म आसन करै पवन परिचै करै
गगन के महल पर मदन जारै।
कहत कबीर कोइ संतजन जौहरी
करम की रेख पर मेख मारै ॥५॥

राम के नाम ते पिंड ब्रह्मंड सब राम का नाम सुनि भरम मानी।
निरगुन निरंकार के पार परब्रह्म है तासु को नाम रंकार जानी ॥
बिष्णु पूजा करै ध्यान शंकर धरै मनहि सुबिरंचि बहु बिबिध बानी।
कहै कब्बीर कोउ पार पावै नहीं राम को नाम है अकह कहानी ॥६॥

नाम अमल उतरै ना भाई।
और अमल छिन छिन चढ़ि उतरै नाम अमल दिन बढ़ै सवाई ॥
देखत चढ़ै सुनत हिय लागै सुरत किये तन देत घुमाई ॥
पियत पियाला भये मतवाला पायो नाम मिटी दुचिताई ॥
जो जन नाम अमल रस चाखा तर गइ गनिका सदन कसाई।
कह कबीर गूँगे गुड़ खाया बिन रसना का करै बड़ाई ॥ ७ ॥

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँस लिये कर डोलै बोलै मधुरी बानी ॥
केशव के कमला है बैठी शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति है बैठी तीरथ में भइ पानी ॥
योगी के योगिनि है बैठी राजा के घर रानी।
काहू के हीरा है बैठी काहू के कौड़ी कानी ॥
भक्तन के भक्तिनि है बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो हो संतो यह सब अकथ कहानी ॥ ८ ॥

जरासिंधु शिशुपाल सँहारा। सहस अर्जुनै छल सों मारा॥
बड़ छल रावण से गये बीती। लंका रह कंचन की भीती॥
दुर्योधन अभिमानहिं गयऊ। पंडव केर मरम नहिं पयऊ॥
माया के डिभ गे सब राजा। उत्तम मध्यम बाजन बाजा॥
छौंच कवै वित धरनि समाना। याको जीव परतीति न आना॥
कहँ लौ कहौं अचेते गयऊ। चेत अचेत झगर एक भयऊ॥

ई माया जग मोहिनी मोहिसि सब जग धाय।
हरिचंद सत के कारने घर घर गयो बिकाय॥ ६॥

पंडित सोधि कहहु समुझाई। जाते आवागमन नसाई।
अर्थ धर्म औ काम मोक्ष फल कौन दिशा बस भाई॥
उत्तर दक्खिन पूरब पच्छिम सरग पतालहिं माहे।
बिन गोपाल ठौर नहिं कतहूँ नरक जात धौं काहे॥
अनजाने को नरक सरग है हरि जाने को नाहीं।
जेहि डर को सब लोग डरत हैं सो डर हमरे नाहीं॥
पाप पुन्न की संका नाहीं नरक सरग नहिं जाहीं।
कहै कबीर सुनो हे संतो जहँ पद तहां समाहीं॥१०॥

भाई कोइ सतगुरु संत कहावै, नैनन अलख लखावै।
डोलत डिगै न बोलत बिसरै जब उपदेश दृढ़ावै॥
प्रान पूज्य किरिया ते न्यारा सहज समाधि सिखावै।
द्वार न रूँधै पवन न रोकै नहिं अनहद अरुझावै॥
यह मन जाय जहाँ लग जब हीं परमातम दरसावै।
करम करै निहकरम रहै जो ऐसी जुगुत लखावै॥

सदा विलास आस नहिं मन में भोग में जोग जगावै।
धरती त्यागि अकासहुँ त्यागै अधर मँड़इया छावै॥
सुन्न सिखर के सार सिला पर आसन अचल जमावै।
भीतर रहा सो बाहर देखै दूजा दृष्टि न आवै॥
कहत कबीर बसा है हंसा आवागमन मिटावै॥११॥
साँचे सतगुरु की बलिहारी। जिन यह कुंजी कुफुल उघारी॥
नख सिख साहब है भरपूरा। सो साहब क्यों कहिए दूरा॥
सतगुरु दया अमी रस भीजै। तन मन धन सब अर्पन कीजै॥
कहत कबीर संत सुखदाई। सुखसागर असथिर घर पाई॥१२॥
अबरन बरन न गनिय रंक धनि बिमल बास निज सोई॥
बाम्हन छत्री बैस सूद्र सब भगत समान न कोई।
धन वह गाँव ठाँव असथाना है पुनीत संग लोई॥
होत पुनीत जपै सतनामा आपु तरै तारै कुल दोई।
जैसे पुरइन रहै जल भीतर कह कबीर जग में जन सोई॥१३॥
दरियाव की लहर दरियाव है जी दरियाव औ लहर भिन्न कोयम।
उठे तो नीर है बैठता नीर है कहो किस तरह दूसरा होयम॥
उसी नाम को फेर के लहर धारो लहर के कहे क्या नीर खोयम।
जक्त ही फेर सब जक्त है ब्रह्म में ज्ञान करि देख कब्बीर गोयम १४
मुक्त होवै छुटै बँधन सेती तब कौन मरै तिसे कौन मारै।
अहंकार तजै भयरहित होवै तब कौन तरै तिसे कौन तारै॥
मरना जीना है ताहि को जी जो आपु को आपु बिसारि डारै।
चैतन्य होवै उठि जागि देखै दया देखिकै जोति कबीर बारै॥१५॥

तो को पीव मिलैंगे घूँघट का पट खोल रे।
घट घट में वह साँई रमता कटुक बचन मत बोल रे॥
धन जीवन को गरब न कीजै झूठा पँचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बारि ले आसा सों मत डोल रे॥
जाग जुगुत सो रंग-महल में पिय पायो अनमोल रे।
कहैं कबीर आनन्द भयो है बाजत अन्हद ढोल रे॥१६॥
दुलहिन गावो मंगलचार। हमरे घर आये राम भतार॥
तन रति कर मैं मन रति करिहौं पाँचों तत्व बराती।
रामदेव मोहि ब्याहन आए मैं जोबन मदमाती॥
सरिर सरोवर वेदी करिहौं ब्रह्मा वेद उचारा।
रामदेव संग भाँवर लैहौं धन धन भाग हमारा॥
सुर तैंतीसो कौतुक आए मुनिवर सहस अठासी।
कह कबीर मोहिं ब्याहि चले हैं पुरुष एक अविनासी॥१७॥
अपने करम न मेटो जाई।
कर्म के लिखा मिटेधौं कैसे जो युग कोटि सिराई॥
गुरु वसिष्ठ मिलि लगन सोधाई सूर्य्य मंत्र एक दीन्हा।
जो सीता रघुनाथ बिआही पल एक संच न कीन्हा॥
नारद मुनि को बदन छपायो कीन्हों कपि से रूपा।
सिसुपालहुँ की भुजा उपारी आपुन वोध सरूपा॥
तीन लोक के करता कहिए बालि बध्यो बरिआई।
एक समय ऐसी बनि आई उनहूँ अवसर पाई॥
पारवती को बाँझ न कहिए ईस न कहिय भिखारी।
कह कबीर करता की बातैं करम की बात निआरी॥१८॥

सुन्दर देह देख निज भूलो झपट लेत जस बाज बटेरा।
यह देही को गरब न कीजै उड़ पंछी जस लेत बसेरा॥
या नगरी में रहन न पैहो कोइ रहि जाग न दूख घनेरा।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो मानुख जनम न पैहो फेरा॥१९॥

ऐसी नगरिया में केहि विध रहना।
नित उठ कलंक लगावै सहना॥
एकै कुआँ पाँच पनिहारी।
एकै लेजुर भरै नौ नारी॥
कट गया कुँआँ बिनस गई बारी।
बिलग भई पाँचो पनिहारी॥
कहैं कबीर नाम बिनु बेरा।
उठ गया हाकिम लुट गया डेरा॥ २०॥

तोरी गठरी में लागे चोर, बटोहिया का रे सोवै।
पाँच पचीस तीन हैं चोरवा, यह सब कीन्हा सोर॥
जाग सबेरा बाट अनेरा, फिर नहिं लागै जोर।
भवसागर एक नदी बहत है, बिन उतरे जीव बोर॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, जागत कीजै भोर॥२१॥

गगन घटा घहरानी, साधो गगन घटा घहरानी।
पूरब दिसि से उठी बदरिया रिमझिम बरसत पानी॥
आपन आपन मेंड़ सम्हारो बह्यो जात यह पानी।
मन कै बैल सुरत हरवाहा जोत खेत निरबानी॥

दुबिधा दूब छोल करु बाहर बोव नाम की धानी।
जोग जुगुत करि करु रखवारी चर न जाय मृगधानी॥
बाली झार कूट घर लावै सोई कुसल किसानी।
पाँच सखी मिल कीन रसोइया एक से एक सयानी॥
दूनों थार बराबर परसे जेवैं मुनि अरु ज्ञानी।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो यह पद है निरबानी॥
जो या पद को परिचै पावे ताको नाम बिज्ञानी॥२२॥

मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया।
पाँच तत्त कै बनी चुनरिया सोरह सै बँद लागे जिया।
यह चुनरी मोरे मैके ते आई ससुरे में मनुआ खोय दिया॥
मलि मलि धोई दाग न छूटै ज्ञान को साबुन लाय पिया।
कहत कबीर दाग तब छुटिहै जब साहब अपनाय लिया॥२३॥

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिंदू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई॥
वेस्या के पायन तर सोवै यह देखो हिंदुआई।
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई॥
खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहिं में करैं सगाई।
बाहर से इक मुर्दा लाए धोय धाय चढ़वाई॥
सब सखियाँ मिलि जेवन बैठीं घर भर करैं बड़ाई।
हिंदुन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो कौन राह है जाई॥२४॥

(कबीर-वचनावली)

सुन्दरदास

सुन्दरदास का जन्म चैत्र शुक्ला नवमी संवत् १६५३ में जयपुर राज्य के द्यौसा नामक स्थान में हुआ था। ये खंडेलवाल बनिये थे। इनके पिता का नाम परमानन्द और माता का नाम सती था। दादूपंथ के प्रवर्त्तक महात्मा दादूदयाल के ये एक कृपापात्र शिष्य थे। दादूदयाल का देहान्त १६६० में हो चुका था। उनकी मृत्यु के पश्चात् इन्होंने जगजीवन साधु के सत्संग में कुछ समय बिताया। जगजीवन ही इन्हें काशी में लाए। काशी में सुन्दरदास ने तीस वर्ष की अवस्था तक संस्कृत-व्याकरण, वेदान्त और पुराण आदि का अच्छा अध्ययन किया। काशी में अपना अध्ययन समाप्त करके ये राजपूताने के फतहपुर (शेखा-वाटी) नामक स्थान में आकर रहने लगे। वहां के नवाब अलिफखां इनका अच्छा आदर करते थे। इनकी मृत्यु साँगानेर में कार्तिक शुक्ला अष्टमी संवत् १७४६ में हुई।

सुन्दरदास उन सन्त कवियों में से एक हैं जिनकी महत्ता की ओर अभी तक समालोचकों का पूरा ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ। उनकी रचनाएं सन्त-साहित्य की बहुमूल्य सम्पत्ति है। यों तो उन्होंने 'ज्ञान-समुद्र', 'सर्वांगयोग-प्रदीपिका', 'पंचेन्द्रिय-चरित्र' और 'सुन्दर-विलास' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, पर उनमें सब से अधिक ख्याति 'सुन्दर विलास' ने ही प्राप्त की है। उनकी रचनाओं में उच्चकोटि की दार्शनिकता और कवित्व का अपूर्व संमिश्रण हुआ है। उनके पद्यों में दार्शनिक

सिद्धांतों को सरस, अलंकारपूर्ण भाषा में जनसाधारण तक पहुँचाने का प्रयत्न किया गया है। यह कार्य महात्मा कबीर ने भी किया था किन्तु उनकी वाणी में उस सरसता और मृदुलता का अभाव है जो पाठकों को मंत्र-मुग्ध-सा बना देती है। यदि महात्मा कबीर मस्तिष्क को जगाते हैं तो सुन्दरदास मानव-हृदय का स्पर्श करते हैं। कबीर पढ़े-लिखे न थे, उनका शास्त्रीय ज्ञान सीमित था। किन्तु सुन्दर दास एक उच्चकोटि के विद्वान् थे। उन्होंने शास्त्रों का अच्छा अध्ययन किया था। सुन्दरदास की भाषा काव्य की मंजी हुई भाषा है। काव्यशास्त्र का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। अन्य सन्त कवियों ने केवल गाने के पद और दोहे कहे हैं, पर इन्होंने सिद्धहस्त कवियों के समान विविध छन्दों का प्रयोग किया है। इनके पद्यों में अलंकारों का चमत्कार भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। इनकी भाषा में लालित्य विशेष रूप में वर्तमान है, पर लालित्य लाने के लिए इन्होंने भाव को बिगाड़ने की चेष्टा कहीं नहीं की।

सुन्दरदास दादूदयाल के शिष्य थे और दादूदयाल ने अपना एक अलग पन्थ चलाया था जो 'दादू-पन्थ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'दादू-पंथ' के सिद्धांत भी कबीर के सिद्धांतों से मिलते-जुलते हैं। 'दादू-पंथी भी कबीर के समान निर्गुण, निरंजन, निराकार के उपासक हैं। सुन्दरदास 'दादू-पंथी' अवश्य थे किंतु उनके विचार कबीर के विचारों से मिलते-जुलते हैं। कबीर की भाँति इन्होंने भी जप, माला, तीर्थ-यात्रा, आचार, व्रत आदि को कोई महत्व नहीं दिया और मुक्ति प्राप्त करने के लिये ज्ञान को आवश्यक बताया है। हाँ कबीर की-सी खंडन-मण्डन की प्रवृत्ति इनमें

नहीं थी। संसार की अनित्यता बतलाते हुए भी इन्होंने लोकधर्म की उपेक्षा नहीं की है। अपने गुरु दादूदयाल के प्रति इनकी असीम भक्ति थी। इन्होंने ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु की आवश्यकता का स्थान-स्थान पर वर्णन किया है।

सुन्दरदास गम्भीर से गम्भीर विषयों को हृदयङ्गम बनाने में पूर्ण सफल हुए हैं। 'पंचेन्द्रिय-चरित्र' में पाँच इन्द्रियों का वर्णन बड़ी सुन्दर और सरल भाषा में किया गया है। गज, मीन, भ्रमर आदि की कथाओं के द्वारा एक गम्भीर विषय भी रोचक और शिक्षाप्रद बना दिया गया है। सुन्दर, रोचक शब्दों में शिक्षा देना सुन्दरदास खूब जानते थे। उन्होंने ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, नीति, धर्मोपदेश आदि विषयों पर ग्रन्थ लिखे। उनके ग्रन्थों में शान्त रस की प्रधानता है। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि शान्तरस में भी सरस, सुन्दर, मधुर काव्य की रचना हो सकती है सुन्दरदास केवल कवि ही नहीं अपितु षट्शास्त्रों के एक प्रकांड पंडित भी थे। सांख्य, योग और वेदान्त के अद्वैतवाद में वे बड़े निपुण थे। कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण उन्होंने बड़ी सफलता से किया है।

आध्यात्मिकता भारत की विशेषता है और यह आध्यात्मिकता सन्त-कवियों के साहित्य में पूर्णतया प्रस्फुटित हुई है। सुन्दरदास ने इसी आध्यात्मिकता की ओर जनसाधारण का ध्यान आकृष्ट करने में प्रशंसनीय कार्य किया है। अभी तक उनके ग्रन्थों पर पूर्ण प्रकाश नहीं पड़ा है। जब उनके ग्रन्थ रसिकों में प्रचलित होंगे तब उनकी कीर्ति भी फैलेगी।

गुरु

शत्रु ही न मित्र कोऊ जाकै सब है समान
देह कौ ममत्व छोड़ें आत्मा ही राम हैं।
और ऊ उपाधि जाकै कबहूँ न देषियत
सुख के समुद्र मैं रहत आठो जाम हैं॥
ऋद्धि अरु सिद्धि जाकै हाथ जौरि आगे षरी
सुंदर कहत ताकै सब ही गुलाम हैं।
अधिक प्रशंसा हम कैसैं करि कहि सकैं
ऐसे गुरुदेव कौं हमारे जु प्रनाम हैं॥ १॥
ज्ञान कौ प्रकाश जाकै अंधकार भयो नाश
देह अभिमान जिनि तज्यौ जानि सार धी।
सोई सुख सागर उजागर बैरागर ज्यौं
जाकै बैन सुनत बिलात है बिकार धी॥
अगम अगाध अति कोऊ नहिं जानै गति
आतमा कौ अनुभव अधिक अपार धी।
ऐसौ गुरुदेव बंदनीक तिहुँ लोक माँहिं
सुंदर बिराजमान शोभत उदार धो॥ २॥
काहू सौं न रोष तोष काहू सौं न राग दोष
काहू सौं न बैरभाव काहू की न घात है।

काहू सौं न बकवाद काहू सौं नहीं विषाद
काहू सौं न संग न तौ कोउ पक्षपात है ॥
काहू सौं न दुष्ट वैन काहू सौं न लैन दैन
ब्रह्म कौ विचार कछु और न सुहात है ॥
सुन्दर कहत सोई ईशनि कौ महाईश
सोई गुरुदेव जाकै दूसरी न बात है ॥ ३ ॥

लोह कौं ज्यौं पारस पषान हूँ पलटि लेत
कंचन छुवत होइ जग मैं प्रवांनियें।
द्रुम कौं ज्यौं चन्दन हूँ पलटि लगाइ बास
आपु के समान ताके शीतलता आनियें ॥
कीट कौं ज्यौं भृङ्ग हू पलटि कै करत भृङ्ग
सोउ उडि जाइ ताकौं अचिरज मानियें।
सुन्दर कहत यह सगरै प्रसिद्ध बात
सद्य शिष्य पलटै सु सत्य गुरु जानियें ॥ ४ ॥

गुरु बिन ज्ञान नाहिं गुरु बिन ध्यान नाहिं
गुरु बिन आतमा बिचार न लहतु है।
गुरु बिन प्रेम नाहिं गुरु बिन प्रीति नाहिं
गुरु बिन शील हू संतोप न गहतु है ॥
गुरु बिन प्यास नाहिं बुद्धि औ प्रकाश नाहिं
भ्रम हू कौ नाश नाहिं संशय रहतु है।
गुरु बिन बाट नाहिं कौडा बिन हाट नाहिं
सुन्दर प्रगट लोक वेद यौं कहतु है ॥ ५ ॥

काल

मंदिर माल विलाइति हैं गज ऊंट दमामे दिना इक दो है।
बात हु मात त्रिया सुत बंधव देषि धौं पामर होत बिछोहै॥
झूठ प्रपंच सौं राचि रह्यो शठ काठ की पुतरि ज्यौं कपि मोहै।
मेरि हि मेरि करै नित सुंदर आंष लगै कहि कौन को को है॥६॥

है दिन च्यारि बिराम लियौ सठ तेरे कहैं कछु है गइ तेरी।
जैसैं हि बाप ददा गये छाडि सु तैसें हि तूं तजि है पल फेरी॥
मारि है काल चपेटि अचानक होइ घरीक मैं राष की ढेरी।
सुन्दर लै न चलै कछु संग सु भूलि कहै नर मेरि हि मेरी॥७॥

करत करत धंध कछुव न जानै अंध
आवत निकट दिन आगिलौ चपाकि दै।
जैसैं बाज तीतर कौं दाबत अचांनचक
जैसें बक मछरी कौं लीलत लपाकि दै॥
जैसैं मक्षिका की घात मकरी करत आइ
जैसैं सांप मूषक कौं ग्रसत गपाकि दै।
चेति रे अचेत नर सुन्दर संभारि राम
ऐसैं तोहि काल आइ लेइगौ टपाकि दै॥८॥

मेरौ देह मेरौ गेह मेरौ परिवार सब
मेरौ धन माल मैं तौ बहुविधि भारौ हौं।
मेरौ सब सेवक हुकम कोउ मेटे नांहि
मेरी जुवती कौ मैं तौ अधिक पियारौ हौं।

मेरौ बंश ऊँचौ मेरे बाप दादा ऐसे भये
करत बडाई मैं तौ जगत उज्यारौ हौं।
सुन्दर कहत मेरौ मेरौ करि जानैं सठ
ऐसी नहिं जानै मैं तौ काल ही कौ चारौ हौं ॥ ६ ॥

ऊठत बैठत काल जागत सोवत काल
चलत फिरत काल काल घोर घर्‌यौ है।
कहत सुनत काल षात हू पीवत काल
काल ही के गाल मांहि हर हर हंस्यौ है॥
तात मात बंधु काल सुत दारा गृह काल
सकल कुटंब काल काल जाल फंस्यौ है।
सुन्दर कहत एक राम बिन सब काल
काल ही कौ कृत्त कियौ अंत काल ग्रस्यौ है ॥१०॥

मूठ सौं बंध्यौ है लाल ताही तें ग्रसत काल
काल बिकराल व्याल सब ही कौं षात है।
नदी को प्रवाह चल्यो जात है समुद्र मांहि
तैसैं जग कालहिं कै मुख मैं समात है॥
देह सौं ममत्व तातैं काल कौ भै मानत है
ज्ञान उपजै तैं वह कालहू बिलात है।
सुन्दर कहत परब्रह्म है सदा अखंड
आदि मध्य अन्त एक सोई ठहरात है ॥ ११ ॥

देह

मृत्तिका को पिंड देह ताही मैं युगति भई
नासिका नयन मुख श्रवन बनाये
सीस हाथ पाव अरु अंगुली बिराजमान
अंगुली कै आगे पुनि नखऊ लगाये हैं॥
पेट पीठि छाती कंठ चिबुक अधर गाल
दसन रसन बहु वचन सुहाये हैं।
सुन्दर कहत जब चेतना शकति गई
वहै देह जारि बारि छार करि आये हैं॥ १८॥

माइ तौ पुकारि छाती कूटि कूटि रोवत है
बाप हू कहत मेरौ नन्दन कहाँ गयौ।
भइया कहत मेरी बाँह आज दूरि भई
बहन कहत मेरै बीर दुःख है दयौ॥
कामिनी कहत मेरौ सीस सिरताज कहाँ
उनि ततकाल हाथ मैं सिंधौरा है लयौ।
सुन्दर कहत ताहि कोऊ नहिं जान सकै
बोलत हुतौ सु यह छिन मैं कहा भयौ॥ १२॥

तृष्णा

नैंननि की पल ही पल मैं क्षण आध घरी घटिका जु गई है।
जाम गयौ जुग जाम गयौ पुनि साँझ गई तब रात भई है॥
आज गई अरु काल्हि गई परसौं तरसौं कछु और ठई है।
सुन्दर ऐसैं हि आयु गई "तृष्णा दिन ही दिन होत नई है"॥१४॥

कन ही कनकौं बिललात फिरै सठ जाचत है जन ही जन कौं।
तन ही तन कौं अति सोच करै नर षात रहै अन ही अन कौं॥
मन ही मन की तृष्णा न मिटी पुनि धावत है धन ही धन कौं।
छिन ही छिन सुन्दर आयु घटी कबहूँ न गयौ बन ही बन कौं॥१५॥
तीनहुँ लोक अहार कियौ फिरि सात समुद्र पियौ सब पानी।
और जहाँ तहाँ ताकत डोलत काढत आँषि डरावत प्रानी॥
दांत दिषावत जीभ हलावत याहि तें मैं यह डायनि जानी।
सुन्दर षात भये कितने दिन 'हे तृष्णा अजहूँ न अघानी"॥१६॥
तूँ हि भ्रमाइ प्रदेश पठावत बूड़त जाइ समुद्र जिहाजा।
तूँ हि भ्रमाइ पहार चढ़ावत वादि वृथा मरि जाइ अकाजा॥
तैं सब लोक नचाइ भली विधि भांड किये सब रंक रु राजा।
सुन्दर तोहि दिखाइ कहौं अब "हे तृष्णा तोहि नैकु न लाजा"॥१७॥

पेट

किधौं पेट चूल्हा किधौं भाठी किधौं भार आहि
जाई कछु झौंकिये सु सब जरि जातु है।
किधौं पेट थल किधौं बांबी किधौं सागर है
जितौ जल परै तितौ सकल समातु है॥
किधौं पेट दैत्य किधौं भूत प्रेत राक्षस है
षांव षांव करै कहुँ नैकु न अघातु है।
सुन्दर कहत प्रभु कौन पाप लायौ पेट
जब तैं जनम भयौ तब ही कौ षातु है॥१८॥

तैं तो प्रभु दीयौ पेट जगत नचायौ जिनि
पेट ही कै लिये घर घर द्वार फिरयौ है।
पेट ही कै लिये हाथ जोरि आगै ठाडौ होइ
जोइ जोइ कह्यो सोइ सोइ उनि करयौ है॥
पेट ही कै लिये पुनि मेघ शीत घाम सहै
पेट ही कै लिये जाइ रनु मांहिं मरयौ है।
सुन्दर कहत इन पेट सब भांड किये
और गैल छूटी परि पेट गैल परयौ है॥ १६॥

पेट सो न बली जाकै आगै सब हारि चले
राव अरु रंक एक पेट जीति लिये हैं।
कोउ बाघ मारत विदारत है कुंजर कौं
ऐसै सूर बीर पेट काज प्रान दिये हैं॥
यंत्र मंत्र साधत अराधत मसान जाइ
पेट आगै डरत निडर ऐसै हीये हैं।
देवता असुर भूत प्रेत तीनौं लोक पुनि
सुन्दर कहत प्रभु पेट जेर किये हैं॥ २०॥

पेट हि कारण जीव हतै बहु पेट हि मांस भषै रु सुरापी।
पेट हि लै करि चौरि करावत पेट हि कौ गठरी गहि कापी॥
पेट हि पासि गरे मँहि डारत पेट हि डारत कूप हु वापी।
सुन्दर काहे कौं पेट दियौ प्रभु पेट सौ और नहीं कोउ पापी॥२१॥

देह की मलिनता

जा शरीर माँहिं तूँ अनेक सुख माँनि रह्यौ
ताही तूँ बिचारि यामैं कौन बात भली है।
मेद मज्जा मांस रग रगनि माँहि रक्त
पेट हू पिटारो सो मैं ठौर ठौर मली है॥
हाडनि सौं मुख भर्‌यौ हाड ही कै नैंन नाक
हाथ पाँव सोऊ सब हाड ही की नली है।
सुन्दर कहत याहि देषि जिनि भूलै कोइ
भीतरि भंगार भरि ऊपर तैं कली है॥ २२॥

हाड कौ पिंजर चाम मढ़्यौ सब, माँहिं भर्‌यौ मल मूत्र बिकारा।
थूक रु लार परै मुख तैं पुनि व्याधि बहै सब औरहु द्वारा॥
मांस की जीभ सौं षाइ सबै कछु ताहि तें ताको है कौन बिचारा।
ऐसै शरीर मैं पैसि कै सुन्दर कैसैक कीजिए सुच्य अचारा॥ २३॥

मन की चंचलता

हटकि हटकि मन राषत जु छिन छिन
सटकि सटकि चहुँ वोर सब जात है।
लटकि लटकि ललचाइ लोल बार बार
गटकि गटकि करि बिष फल षात है॥
झटकि झटकि तार तोरत करम हीन
भटकि भटकि कहुँ नैकुँ न अघात है।
पटकि पटकि सिर सुन्दर जु मानी हारि
फटकि फटकि जाइ सुधौं कौंन बात है॥ २४॥

रङ्क कौ नचावै अभिलाषा धन पाइवे की
निश दिन सोच करि ऐसैं ही पचत हैं।
राजा हि नचावै सब भूमि ही को राज लेव
औरऊ नचावै कोई देह सौं रचत हैं॥

देवता असुर सिद्ध पन्नग सकल लोक
कीट पशु पंषी कहु कैसैं कै बचत हैं।
सुन्दर कहत काहू संत की कही न जाइ
मन कै नचाये सब जगत नचत हैं॥ २५॥

स्वान कहूँ कि शृगाल कहूँ कि बिडाल कहूँ मन की मति तैसी।
ढेढ कहूँ किधौं डूम कहूँ किधौं भाँड कहूँ कि भंडाइ दे जैसी॥
चोर कहूं बटपार कहूँ ठग जार कहूँ उपमा कहुँ कैसी।
सुन्दर और कहा कहिये अब या मन की गति दीसत ऐसी॥२६॥

निर्गुण-उपासना

ब्रह्म कुलाल रचै बहु भाजन कर्मनि कैं बसि मोहि न भावै।
बिष्णु हु संकट आइ सहै भ्रम काहु कौं रक्षक काहु संतावै॥
शंकर भूत पिशाचनि के पति पानि कपाल लिये बिललावै।
याहि तैं सुन्दर त्रीगुन त्यागि सु निर्मल एक निरंजन ध्यावै॥२७॥

कोटिक बात बनाइ कहै कहा होत भया सब ही मन रंजन।
शास्त्र संमृति बेद पुरान बषानत है अतिसै लुक अंजन॥
पानी में बूडत पानी गहे कत पार पहूँचत है मति भंजन।
सुन्दर तौ लग अंधे की जेवरी जौं लौं न ध्याय है एक निरंजन॥२८॥

शेष महेश गनेश जहां लग विष्णु विरंचिहु कै सिर स्वांमी।
व्यापक ब्रह्म अखण्ड अनावृत बाहरि भीतर अन्तरयांमी॥
वोर न छोर अनन्त कहै गुन याहि तैं सुन्दर,है धन नांमी।
ऐसौ प्रभू जिन कै सिर ऊपर क्यौं परि है तिनकी कहि षांमी॥२६॥

आतमा कै विषै देह आइ करि नाश होइ
आतमा अखंड सदा एकई रहतु है।
जैसैं सांप कंचुकी कौं लियें रहै कोऊ दिन
जीरन उतारि करि नूतन गहतु है॥
जैसैं द्रुमहू कै पत्र फूल फल आइ होत
तिन के गये ते द्रुम औरऊ लहतु है।
जैसे व्योम मांहि अभ्र होइ कैं बिलाइ जात
ऐसौ सौ बिचार कछु सुन्दर कहतु है॥३०॥

पांव जिनि गह्यौ सु तौ कहत है ऊपर सौ
पूंछ जिनि गही तिन लाव सौ सुनायौ है।
सूंडि जिनि गही तिन दगली की बांह कह्यौ
दन्त जिनि गह्यौ तिनि मूसर दिषायौ है॥
कांन जिनि गह्यौ तिनिं सूप सौं वनाइ कह्यौ
पीठि जिनि गही तिनि बिटोरा वतायौ है।
जैसौ है सु तैसौ ताहि सुन्दर सयांपौ जांनै
"आंधरनि हाथी देषि झगरा मचायौ है"॥३१॥

पतिव्रत

पति ही सौं प्रेम होइ पति ही सौं नेम होइ
पति ही सौं छेम होइ पति ही सौं रत है।
पति ही है यज्ञ योग पति ही है रस भोग
पति ही है जप तप पति ही कौ व्रत है॥
पति ही है ज्ञान ध्यान पति ही है पुन्य दान
पति ही तीरथ न्हाँन पति ही कौ मत है।
पति बिन पति नाहिं पति बिन गति नाहिं
सुन्दर सकल विधि एक पतिव्रत है॥ ३२॥
जल कौ सनेही मीन बिछुरत तजै प्रान
मणि बिन अहि जैसैं जीवत न लहिये।
स्वांति बूँद के सनेही प्रगट जगत मांहिं
एक सीप दूसरौ सु चातक ऊ कहिये॥
रवि कौ सनेही पुनि कँवल सरोवर मैं
ससि को सनेही ऊ चकोर जैसैं रहिये।
तैसैं ही सुन्दर एक प्रभु सौं सनेह जोरि
और कछु देषि काहू ओर नहिं बहिये॥ ३३॥

विविध पद

देषौ भाई कामिनि जग मैं ऐसी।
राजा रंक सबनि के घर मैं बाघनि है करि वैसी॥ (टेक)
कबहीं हँसै कबही इक रोवै कोई मरम न पावै।

झीनी पैसि हरै बुधि सबकी छल बल करि गटकावै ॥
ज्ञानी गुनी सूर कवि पण्डित होते चतुर सयाना।
सनमुख होइ परे फन्द माँहि जुवती हाथ बिकाना॥
बस्ती छाड़ि बसैं बन माहैं चाबैं सूके पाता।
दाउ परै उनहूँ कौं मारै दे छाती परि लाता॥
नागलोक नग पतनी कहिये मृत्युलोक मैं नारी।
इन्द्रलोक रंभा ह्वै बैठी मोटी पासि पसारी॥
तीनि लोक मैं बच्यौ न कोई दीये डाढ तर सारे।
सुन्दरदास लगे हरि सुमिरन ते भगवन्त उबारे॥ १॥

संत समागम करिये भाई।
जानि अजानि छुवै पारस कौं लोह पलटि कंचन होइ जाई॥ (टेक)
नाना विधि बतराइ कहावत भिन्न भिन्न करि नाम धराई।
जाकौं बास लगै चन्दन की चन्दन होत बार नहिं काई॥
नवका रूप जानि सतसंगति तामैं सब कोइ बैठहु आई।
और उपाय नहीं तरिबे कौ सुन्दर काढ़ी राम दुहाई॥ २॥

माई हो हरि दरसन की आस।
कब देखौं मेरा प्रान सनेही नैंन मरत दोउ प्यास॥ (टेक)
पल छिन आध घरी नहिं बिसरौं सुमिरत सास उसास।
घर बाहरि मोहि कल न परत है निस दिन रहत उदास॥
यहै सोच सोचत मोहि सजनी सूके रगत र माँस।
सुन्दर बिरहनि कैसैं जीवै बिरह बिथा तन त्रास॥ ३॥

उस सत गुरु की बलिहारी हो।
बंधन काटि किये जिनि मुकता, अरु सब बिपति निवारी हो॥ (टेक)
बानी सुनत परम सुख पायौ, दुरमति गई हमारी हो।
भरम करम के संसै षोले, दिये कपाट उघारी हो॥
माया ब्रह्म भेद समुझायौ, सो हम लियौ बिचारी हो।
आदि पुरुष अभि अंतरि राषे, डांइनि दूर बिडारी हो॥
दया करी उनि सब सुख दाता, अब कै लिये उबारी हो।
भवसागर में बूड़त काढ़े, ऐसे पर-उपगारी हो॥
गुरु दादू के चरण कँवल परि, मेल्हौं सीस उतारी हो।
और कहा ले आगै राषै, सुन्दर भेंट तुम्हारी हो॥ ४॥

मेरौ पिय परदेश लुभानौ री।
जानत हौ अजहूँ नहिं आये, काहू सौं उरझानौ री॥ (टेक)
ता दिन तैं मोहि कल न परत है, जबतैं कियौ पयानौ री।
भूष पियास नींद नहिं आवै, चितवत होत बिहानौ री॥
विरह अग्नि मोहि अधिक जरावै, नैंननि मैं पहिचानौ री।
बिन देषै हौं प्रान तजौंगी, यह तुम सांची मानौ री॥
बहुत दिनन की पंथ निहारत, किनहुँ संदेस न आनौ री।
अब मोहि रह्यो परत नहिं सजनो, तन तैं हंस उडानौ री॥
भई उदास फिरत हौं व्याकुल, छूटौ ठौर ठिकानौ री।
सुन्दर बिरहनि कौ दुख दीरघ, जो जानै सौ जानौ री॥ ५॥

अंधे सो दिन काहे भुलायौ रे।
जा दिन गर्भ हुतौ ऊंधे मुख, रक्त पीत लपटायौ रे॥ (टेक)

बालपनै कछु सुधि नहिं कीनी, मात पिता हुलरायौ रे।
खेलत खात गये दिन यौं ही, माया मोह बंधायौ रे॥
जोबन मांहिं काम रस लुबधी, कामनि हाथ बिकायौ रे।
जैसैं बाजीगर कौ बानर, घर घर बार नचायौ रे॥
तीजापन मैं कुटंब भयौ तब, अति अभिमान बढ़ायौ रे।
मेरी सरभरि करै न कोई, हौं बाबा कौ जायौ रे॥
बिरध भयौ सिर कंपन लागौ, मरनै कौ दिन आयौ रे।
सुन्दरदास कहै समुझावै, कबहूँ राम न गायौ रे॥ ६॥

(सुन्दर-विलास)

अथ पंचेन्द्रिय-चरित्र

नमस्कार गुरुदेव कौं, कीयौ बुद्धि प्रकास।
इन्द्रिय पंच चरित्र कौं, बरनत सुन्दरदास॥१॥

अथ गज-चरित्र

निर्भय बन मैं फिरत गज, मदनमत्त अति अंग।
शंक न आनै और की, क्रीड़त अपने रंग॥२॥
गज क्रीड़त अपने रंगा। बन मैं मदमत्त अनंगा।
बलवन्त महा अधिकारी। गहि तरिवर लेइ उपारी॥३॥
जब दंत भूमि धरि चंपै। तब भार अठारह कंपै।
जहां मन मानै तहां धावै। फल भक्ष करै जो भावै॥४॥
पुनि पीवै निर्मल नीरा। पैठे जल गहर गंभीरा।
जित ही तित सूंड पसारै। गज नाना भाँति पुकारै॥५॥

बैठे जब ही मन मानै। सोवै तब भै नहिं आनै।
पुनि जागै अपनी इच्छा। उठि चलै जहां कौ बंछा ॥६॥
ऐसी विधि वन में डोलै। कोइ अपनै बल नहिं तोलै।
कछु मन में धरै न शंका। हम तें कोउ और न बंका ॥७॥
अति गर्व करै अभिमानी। बूझै नहिं अकथ कहानी।
घट मैं अज्ञान अंधेरी। नहिं जानत अपनौ बैरी ॥८॥
इक मनुष तहां को आवा। तिहिं कुंजर देषन पावा।
उन ऐसी बुद्धि विचारी। फिरि आवा नग्र मझारी ॥९॥
तब कहा नृपति सौं जाई। इक गज बन माँझ रहाई।
हम पकरि इहां लै आवैं। तब कहा बधाई पावैं ॥१०॥
राजा कहि करौं निहाला। तब लोक कुटुंब प्रतिपाला।
जौ लै आवै गज भाई। देहौं तब बहुत बधाई ॥११॥

बहुत बधाइ देउ तुहि, लै आवै गजराज।
जो तूं मेरे काम कौ, करौं सबनि सिरताज ॥१२॥

तब कीयौ दूत सलांमू। हम करहिं नृपति कौ कांमू।
कोउ देहु हमारौ संगा। दश बीस जने बल अंगा ॥१३॥
नृप तब ही वेगि बुलाये। तिनि आवत सीस नवाये।
नृप कही सबनि सौं गाथा। तुम जाहु इनौं के साथा ॥१४॥
नृप दूत हि बीरा दीनौ। उनि सिर चढ़ाइ करि लीनौ।
तब विदा होइ घर आवा। कछु मन मैं फिकिर उपावा ॥१५॥
पुनि सुमिरे सिरजनहारा। तुम देहु बुद्धि करतारा।
तब बुद्धि बिधाता दीनी। कागद की हथिनी कीनी ॥१६॥

बिचि कालबूत भरि लीया। कछु अधिक तमाशा कीया।
अति चित्र बिचित्र संवारी। सब कीये चिन्ह विचारी ॥१७॥
मनु अब ही उठि कैं भागै। मुख बोलत बार न लागै।
उन हुन्नर ऐसा कीनां। इक जीव मांहिं नहिं दीनां ॥१८॥
तब दूत वहां लै जाहीं। गज रहत जहां बन माँहीं।
उनि एक सरोवर पेषा। गज आवत जातें देषा ॥१९॥
तहां षंधक कीना जाई। पतरे तृण लीन छवाई।
तृण ऊपरि मृतिका नापी। ता ऊपर हथिनी राषी ॥२०॥
वे दूत रहे छिप भाई। चुपचाप असारति लाई।
कोउ समय तहां गज आवा। जलपान करै नहिं पावा ॥२१॥
त्रिय देषत अति बेहाला। भयौ कामअंध ततकाला।
हथिनी कौ देषि स्वरूपा। शठ जाइ पर्‌यौ अँध कूपा ॥२२॥

धाइ पर्‌यौ गज कूप मैं, देष्या नहीं विचारि।
काम अन्ध जानै नहीं, कालबूत की नारि ॥२३॥

गज कालबूत नहिं जांनौं। सुधि बीसरि गई निदानौं।
गज कूदि कूदि सिर मारै। भूमी धरि सूंड पछारै ॥२४॥
बल बहुत हि करै गंवारा। निकसन का कतहुं न द्वारा।
तब आये दूत नजीका। देष्या हस्थी अति नीका ॥२५॥
उन संकल तुरत मंगाई। कल ही पग पहराई।
दिन दश नहिं दियौ अहारा। बल छीन भया तिहिं बारा ॥२६॥
जब उतर गई सब रीसा। तब चढ़े महावत सीसा।
उनि अंकुश कर गहि लीना। कुंजर कै मस्तक दीना ॥२७॥

गज तबहिं कछू दुष पावा। अंकुश कै जोर नवावा।
तब षंधक महिं तें काढे। उनि बाहरि कीये ठाढ़े ॥२८॥
पठये राजा पहँ साथी। लै आये घर को हाथी।
उनि किया नजरि सौं मेला। पुनि भये परस्पर भेला ॥२६॥
गज सबहिन सौं पतियाना। वसि भये तबहीं उन जाना।
लै चले नृपति के पासा। पूजी दूतनि की आसा ॥२०॥
जब निकट नगर कै आये। तब सब ही देषन धाये।
गज लिये गये दरबारा। नृप आगे कीन जुहारा ॥२१॥
नृप देषि षुसी भयो भारी। दीयौ सिरपाव . उतारी।
पुनि द्रव्य दिया ततकाला। नृप किये दूत षुसाला ॥२२॥
गज भया काम वसि अंधा। गहि राजदुवारे बंधा।
गज काम अंध नहिं जाना। मानुष कै हाथ विकाना ॥२३॥
गज बैसाये तैं बैसें। ज्यौं कहै महावत तैसें।
अति भूष प्यास दुख देषै। पिछला सुख कतहु न पेषै ॥२४॥
पुनि सीस धुनै पछितावै। परबसि कछु होइ न पावै।
गज काम अंध गहि कीना। इहिं काम बहुत दुख दीना ॥२५॥

काम दिया दुख बहुत ही, बन तजि बंध्या ग्राम।
गज बपुरे की को कहै, विश्व नचाया काम ॥२६॥

यह काम बली हम जाना। ब्रह्मा पुनि काम भुलाना।
इहिं काम रुद्र भरमाया। भिलनी कै पीछे धाया ॥२७॥
इहिं काम पराशर अन्धा। उन धाइ गही मछगन्धा।
इहिं काम शृंगी ऋषि ताये। तिनि नीकि भांति नचाये ॥२८॥

इहिं काम बालि संहारा । रघुनाथ बांन भरि मारा ।
इहिं काम लंकपति षोये । दश सीस पकरि कै रोये ॥३६॥
इहिं काम विश्वमित्र डुलै । तेऊ देषि उर्वशा भूलै ।
इहिं काम कीचक संतापै । गहि भीम षंभ तरि चापै ॥४०॥
इहिं काम अनेक बिगोये । जो अंध निशा मैं सोये ।
देवासुर मानुष जेते । गण गंध्रब मारे केते ॥४१॥
पुनि जीव लक्ष चौराशी । डारी सबहिन कौं पाशी ।
इहिं काम लोकत्रय लूटै । कोई शरण राम के छूटै ॥४२॥
बिनु परसत यह दुख होई । परसत कैसी गति लोई ।
कह सुन्दरदास विचारा । देषहु गज के व्यवहारा ॥४३॥

गज व्यवहारहिं देषि करि, वेगहि तजिये काम ।
सुन्दर निशदिन सुमरिये, अलष निरंजन राम ॥४४॥

(पंचेन्द्रिय-चरित्र)

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी प्रसिद्ध सूफ़ी फकीर शेख मोहिदी (मुहीउद्दीन) के शिष्य थे। इनका जन्म इनकी 'आखिरी कलाम' नामक रचना के अनुसार सन् ९०० हिज़री (सन् १४९२ ई०) में माना जाता है। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ पद्मावत के निर्माणकाल के विषय में इन्होंने स्वयं कहा है :—

"सन नव सै सत्ताइस अहा। कथा-अरंभ-बैन कवि कहा॥"

इससे प्रतीत होता है कि इन्होंने पद्मावत की कथा का आरम्भ सन् ९२७ हिजरी (सन् १५२० के लगभग) में किया था। पद्मावत के आरम्भ में कवि ने शेरशाह की प्रशंसा भी की है। शेरशाह के शासन का आरंभ ९४७ हिजरी अर्थात सन् १५४० ई० से हुआ था। ऐसी दशा में यही संभव जान पड़ता है कि इन्होंने पद्मावत के कुछ पद्यों की रचना सन् १५२० में ही कर ली थी किन्तु सारे ग्रन्थ का निर्माण शेर-शाह के समय में किया। कुछ लोग ग़ाज़ीपुर को इनका जन्मस्थान मानते हैं। वहां से आकर वे जायस नगर में रहने लगे। अमेठी के राजघराने में इनका बड़ा आदर था। कहा जाता है कि इन्हीं की दुआ से अमेठी के राजा को एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ था।

जायसी की मृत्यु ४ रजब ९४९ हिजरी में मानी जाती है। यह निश्चित है कि इनकी मृत्यु अमेठी में ही हुई। अमेठी के राजभवन के सामने इनकी कब्र अब तक सुरक्षित है।

जायसी की तीन रचनाएँ उपलब्ध होती हैं—एक तो प्रसिद्ध 'पद्मावत', दूसरी 'अखरावट' और तीसरी 'आखिरी कलाम'। 'अखरावट' में वर्णमाला के एक एक अक्षर को लेकर ईश्वर, सृष्टि और जीव सम्बन्धी आध्यात्मिक विचार पद्यों में प्रकट किये गये हैं। 'आखिरी कलाम' में क़यामत का वर्णन है। 'पद्मावत' इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह एक प्रबन्ध काव्य है। इसमें चितौर के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेमकथा का वर्णन है। इस काव्य के दो भाग हैं—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध भाग कल्पित है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक घटनाओं पर अवलम्बित है। इस काव्य में इतिहास और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य दिखाया गया है। कवि ने इतिहास प्रसिद्ध नायक-नायिका को लेकर अपनी कहानी का रूप वही रखा है जो कल्पना के उत्कर्ष द्वारा साधारण जनता के हृदय में प्रतिष्ठित था।

जायसी का हृदय प्रेम की पीर से परिपूर्ण था। 'पद्मावत' में रत्नसेन और पद्मावती की प्रेमगाथा का वर्णन करके उन्होंने प्रेम के द्वारा ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग दिखाया है। इसी लिये 'पद्मावत' जहां लौकिक पक्ष में सरल तथा सरस है वहां आध्यात्मिक पक्ष में वह उतना ही गूढ़ और गम्भीर भी है। लौकिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए जायसी परमात्मा के अलौकिक सौन्दर्य की ओर संकेत करते हैं:—

"बहुते जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि, नखत दिसहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥"

राजा रत्नसेन पद्मावती को प्राप्त करने के लिए उसी प्रकार व्याकुल दिखाई देता है जिस प्रकार परमात्मा को प्राप्त करने के लिए सच्चे भक्त की

आत्मा। जायसी ईश्वर की सारी सृष्टि को प्रेम के रंग में रंगी हुई देखते हैं। इस प्रेमगाथा के द्वारा उन्होंने प्रेम का वह शुद्ध मार्ग दिखलाया जिस में हिन्दू अपने हिन्दुत्व कोऔर मुसलमान अपने मुसलमानपन को भूलकर ईश्वर से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। रत्नसेन का पद्मावती तक पहुँचाने वाला प्रेम-पंथ जीवात्मा को परमात्मा में ले जाकर मिलाने वाले प्रेम-पंथ का स्थूल आभास है। राजा रत्नसेन में जीवात्मा का स्वरूप दिखाया गया है। पद्मिनी चैतन्यस्वरूप परमात्मा है। सुआ मार्ग दिखाने वाला सद्गुरु है। उस मार्ग में बाधा डालने वाली नागमती संसार का जंजाल है। राघव चेतन शैतान है और अलाउद्दीन मायारूप है। इस प्रकार जायसी ने एक लौकिक कथा के द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की अभि-व्यंजना की है। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि––'पद्मावत' के सारे पद्य द्व्यर्थक हैं। उनमें सर्वत्र आध्यात्मिक पक्ष के व्यवहार का आरोप नहीं है। केवल बीच बीच में कहीं कहीं दूसरे अर्थ की व्यंजना होती है।

'पद्मावत' की भाषा ठेठ अवधी है। उसकी रचना दोहे-चौपाई वाली पद्धति पर हुई है। उसमें सरसता और भावमयता भरी पड़ी है। जायसी की भाषा परिमार्जित और प्रांजल है। उनकी भावव्यंजना अत्यन्त स्वा-भाविक और मर्मस्पर्शी है। उन्होंने कथावस्तु के स्वाभाविक विकास की ओर पूरा ध्यान दिया है। केवल कुतूहल उत्पन्न करने के लिए घटनाएँ इस प्रकार कहीं नहीं मोड़ी गई हैं जिससे उनमें अलौकिकता या कृत्रिमता प्रगट हो। उनकी वर्णनशक्ति प्रशंसनीय है। सिंहलद्वीपवर्णन, षट्-ऋतु-वर्णन, चित्तौरगढ़-वर्णन और गोराबादल-युद्ध-वर्णन में उनकी वर्णन-शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। इतना अवश्य है कि कहीं कहीं

अधिक विस्तृत होने से उनके वर्णन अरुचिकर-से हो गये हैं। उनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग भी बहुत सुन्दर और स्वाभाविक है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकार ही उनके काव्य में अधिक आये हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार का यह कितना सुन्दर उदाहरण है :-

"छोरे केस, मोति लर छूटीं। जानहुँ रैनि नखत सब टूटीं ॥
सेंदुर परा जो सीस उधारा। आगि लागि चह जग अँधियारा ॥"

'पद्मावत' में रसपरिपाक भी अच्छा हुआ है। शृंगार, वीर, करुण, बीभत्स आदि प्रायः सभी रस इसमें पाये जाते हैं किन्तु कवि का विशेष ध्यान शृंगार की ओर ही रहा है। संभोग शृंगार की अपेक्षा विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन अच्छा हुआ है। नागमती का विरह-वर्णन बड़े मार्मिक शब्दों में किया गया है। विरह-वर्णन में जायसी ने लोक-सीमा का उल्लङ्घन नहीं किया। अपने पति के वियोग में नागमती बन में करुण क्रन्दन करती हुई दिखाई देती है। जायसी सारी सृष्टि को नागमती के आँसुओं से भीगी हुई देखते हैं :—

"कुहुकि कुहिकि जस कोइल रोई। रकत-आँसु घुँघची बन बोई ॥
जहँ जहँ ठाढ़ि होइ बनवासी। तहँ तहँ होइ घुँघुचि कै रासी ॥"

जायसी ने नागमती को विरह की उस दशा में पहुँचाया है जहाँ वह अपने रानीपन को भूल कर जड़-चेतन सारी सृष्टि के साथ अपना बन्धुत्व का नाता जोड़ लेती है। वह, पशु, पक्षी, पेड़, पल्लव जो कुछ सामने आता है, उसे अपना दुखड़ा सुनाती है। उसके विरह-वर्णन में जायसी की उत्कृष्ट कवित्व-शक्ति और सहृदयता का पूर्ण परिचय मिलता है।

महात्मा कबीर ने अपनी झाड़-फटकार के द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों का भेदभाव दूर करने का प्रयत्न किया था, किन्तु उनकी वाणी अधिकतर चिढ़ाने वाली ही सिद्ध हुई। उनकी वाणी में वह शक्ति न थी। जो मनुष्यमात्र के हृदय को प्रभावित करती है। जायसी ने हृदय स्पर्शी प्रेमगाथा के द्वारा मनुष्य मनुष्य के बीच रागात्मक सम्बन्ध की सुन्दर व्यञ्जना की है। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने हिन्दुओं की कहानी ठेठ हिन्दी लिख कर अपनी उदारता का परिचय दिया है। प्रेमगाथाकार कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी का आसन सर्वोच्च है।

नागमती-सुवा-संवाद

दिन दस पाँच तहाँ जो भए। राजा कतहुँ अहेरै गए ॥
नागमती रुपवंती रानी। सब रनिवास पाट-परधानी ॥
कै सिंगार कर दरपन लीन्हा। दरसन देखि गरब जिउ कीन्हा ॥
बोलहु सुआ पियारे-नाहाँ। मोरे रूप कोइ जग माहाँ ? ॥
हँसत सुआ पहँ आइ सो नारी। दीन्ह कसौटी ओपनिवारी ॥
सुआ बानि कसि कहु कस सोना। सिंघलदीप तोर कस लोना ? ॥
कौन रूप तोरी रुपमनी। दहु हौं लोनि कि वै पदमिनी ?॥
जो न कहसि सत सुअटा तोहि राजा कै आन।
है कोई एहि जगत महँ मोरे रूप समान ॥१॥

सुमिरि रूप पदमावति केरा। हँसा सुआ, रानी मुख हेरा ॥
जेहिं सरवर महँ हंस न आवा। बगुला तेहि सर हंस कहावा ॥
दई कीन्ह अस जगत अनूपा। एक एक तें आगरि रूपा ॥
कै मन गरब न छाजा काहू। चाँद घटा औ लागेउ राहू ॥
लोनि बिलोनि तहाँ को कहै। लोनी सोई कंत जेहि चहै ॥
का पूँछहुँ सिंघल कै नारी। दिनहिं न पूजै निसि अँधियारी ॥
पुहुप सुवास सो तिन्ह कै काया। जहाँ माथ का बरनौं पाया ? ॥
गढ़ी सो सोने सोंधै भरी सो रूपै भाग।
सुनत रूखि भइ रानी हिये लोन अस लाग ॥२॥

जो यह सुआ मँदिर महँ अहई। कबहुँ बात राजा सौं कहई॥
सुनि राजा पुनि होइ बियोगी। छाँड़ै राज, चलै होइ जोगी॥
बिख राखिय नहिं, होइ अँकूरू। सबद न देइ भोर तमचूरू॥
धाय दामिनी-वेग हँकारी। ओहि सौंपा हीये रिस भारी॥
देखु, सुआ यह है मँदचाला। भएउ न ताकर जाकर पाला॥
मुख कह आन, पेट बस आना। तेहि औगुन दस हाट बिकाना॥
पंखि न राखिय होइ कुभाखी। लेइ तहँ मारु जहाँ नहिं साखी॥

जेहि दिन कहँ मैं डरति हौं रैनि छिपावौं सूर।
लै चह दीन्ह कवँल कहँ मो कहँ होइ मयूर॥३॥

धाय सुआ लेइ मारै गई। समुझि गियान हिये मति भई॥
सुआ सो राजा कर बिसरामी। मारि न जाइ चहै जेहि स्वामी॥
यह पंडित खंडित बैरागू। दोष ताहि जेहि सूझ न आगू॥
जो तिरिया के काज न जाना। परै धोख, पाछे पछिताना॥
नागमती नागिनी-बुधि ताऊ। सुआ मयूर होइ नहिं काऊ॥
जो न कंत के आयसु माहीं। कौन भरोस नारि कै वाही ?॥
मकु यह खोज होइ निसि आए। तुरय-रोग हरि-माथे जाए॥

दुइ सो छपाए ना छपै एक हत्या एक पाप।
अंतहि करहिं बिनास लेइ सेइ साखी देइँ आप॥४॥

राखा सुआ धाय मति साजा। भएउ खोज निसि आयउ राजा॥
रानी उतर मान सौं दीन्हा। पंडित सुआ मजारी लीन्हा॥
मैं पूछा सिंघल पदमिनी। उतर दीन्ह तुम्ह को नागिनी ?॥
वह जस दिन, तुम निसि अँधियारी। कहाँ बसंत करील क बारी॥

का तोर पुरुष रैनि कर राऊ। उलू न जान दिवस कर भाऊ॥
का वह पंखि कूट मुँह कूटे। अस बड़ बोल जीभ मुख छोटे॥
जहर चुवै जो जो कह बाता। अस हतियार लिए मुख राता॥

माथे नहिं बैसारिय जौं सुठि सुआ सलोन।
कान टुटैं जेहि पहिरे का लेइ करब सो सोन ?॥५॥

राजै सुनि वियोग तस माना। जैसे हिय विक्रम पछिताना॥
वह हीरामन पंडित सूआ। जो बोलै मुख अमृत चूआ॥
पंडित तुम्ह खंडित निरदोखा। पंडित हुतें परै नहिं धोखा॥
पंडित केरि जीभ मुख सूधी। पंडित बात न कहै बिरूधी॥
पंडित सुमति देइ पथ लावा। जो कुपंथि तेहि पंडित न भावा॥
पंडित राता बदन सरेखा। जो हत्यार रुहिर सो देखा॥
की परान घट आनहु मती। की चलि होहु सुआ सँग सती॥

जिमि जानहु कै औगुन मँदिर होइ सुखराज।
आयसु मेटें कंत कर काकर भा न अकाज ?॥६॥

चाँद जैस धनि उजियरि अही। भा पिउ-रोस, गहन अस गही॥
परम सोहाग निबाहि न पारी। भा दोहाग सेवा जब हारी॥
एतनिक दोस बिरचि पिउ रूठा। जो पिउ आपन कहै सो झूठा॥
ऐसे गरब न भूलै कोई। जेहि डर बहुत पियारी सोई॥
रानी आय धाय के पासा। सुआ मुआ सेवँर के आसा॥
परा प्रीति-कंचन महँ सीसा। बिहरि न मिलै स्याम पै दीसा॥
कहाँ सोनार पास जेहि जाऊँ। देइ सोहाग करै एक ठाऊँ॥

मैं पिउ-प्रीति भरोसे गरब कीन्ह जिउ माँह।
तेहि रिस हौं परहेली, रूसेउ नागर नाँह ॥७॥

उतर धाय तब दीन्ह रिसाई। रिस आपुहि, बुधि औरहि खाई॥
मैं जो कहा रिस जिनि करु बाला। को न गएउ एहि रिस कर घाला?॥
तू रिसभरी न देखेसि आगू। रिस महँ काकर भएउ सोहागू?॥
जेहि रिस तेहि रस जोगै न जाई। विनु रस हरदि होइ पियराई॥
बिरस विरोध रिसहि पै होई। रिस मारै, तेहि मार न कोई॥
जेहि रिस कै मरिए, रस जीजै। सो रस तजि रिस कबहुँ न कीजै॥
कंत-सोहाग कि पाइय साँधा। पावै सोइ जो ओहि चित बाँधा॥

रहै जो पिय के आयसु औ बरतै होइ हीन।
सोइ चाँद अस निरमल जनम न होइ मलीन ॥८॥

जुआ-हारि समुझी मन रानी। सुआ दीन राजा कहँ आनी॥
मानु पीय! हौं गरब न कीन्हा। कंत तुम्हार मरम मैं लीन्हा॥
सेवा करै जो बरहौ मासा। एतनिक औगुन करहु बिनासा॥
जौं तुम्ह देइ नाइ कै गीवा। छाँड़हु नहिं बिनु मारे जीवा॥
मिलतहु महँ जनु अहौ निरारे। तुम्ह सौं अहै अँदेस, पियारे!॥
मैं जानेउँ तुम्ह मोही माहाँ। देखौं ताकि तौ हौ सब पाहाँ॥
का रानी, का चेरी कोई। जा कहँ मया करहु भल सोई॥

तुम्ह सौं कोउ न जीता हारे बररुचि भोज।
पहिले आपु जो खोवै करै तुम्हार सो खोज ॥ ९ ॥

राजा का जोगी होना

तजा राज, राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहेउ बियोगी॥
तन बिसँभर, मन बाउर लटा। अरुझा पेम, परी सिर जटा॥
चँद्र-बदन औ चंदन-देहा। भसम चढ़ाइ कीन्ह तन खेहा॥
मेखल, सिंघी, चक्र, धँधारी। जोगवाट, रुदराछ, अधारी॥
कंथा पहिरि दंड कर गहा। सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा॥
मुद्रा स्रवन, कंठ जपमाला। कर उदपान, काँध बघछाला॥
पाँवरि पाँव, दीन्ह सिर छाता। खप्पर लीन्ह भेस करि राता॥
चला भुगुति माँगे कहँ साधि किया तप जोग।
सिद्ध होइ पदमावति जेहि कर हिये बियोग॥१॥

गनक कहहिं गनि गौन न आजू। दिन लेइ चलहु, होइ सिध काजू॥
पेम-पंथ दिन घरी न देखा। तब देखै जब होइ सरेखा॥
जेहि तन पेम कहाँ तेहि माँसू। कया न रकत, नैन नहिं आँसू॥
पंडित भूल, न जानै चालू। जीउ लेत दिन पूछ न कालू॥
सती कि बौरी पूछहि पाँड़े। औ घर पैठि कि सैंतै भाँड़े॥
मरै जो चलै गंग-गति लेई। तेहि दिन कहाँ घरी को देई?॥
मैं घर बार कहाँ कर पावा। घरी क आपन, अंत परावा॥
हौं रे पथिक पखेरू जेहि बन मोर निबाहु।
खेलि चला तेहि बन कहँ तुम अपने घर जाहु॥२॥

चहुँ दिसि आन साँटिया फेरी। भै कटकाई राजा केरी॥
जावत अहहिं सकल अरकाना। साँभर लेहु, दूरि है जाना॥
सिंघलदीप जाइ अब चाहा। मोल न पाउब जहाँ बेसाहा॥

सब निबहै तहँ आपनि साँठी । साँठि बिना सो रह मुख माटी ॥
राजा चला साजि कै जोगू । साजहु वेगि चलहु सब लोगू ॥
गरब जो चढ़े तुरग कै पीठी । अब भुइँ चलहु सरग कै डीठी ॥
मंतर लेहु होहु सँग-लागू । गुदर जाइ सब होइहि आगू ॥
का निचिंत रे मानुस ! आपन चीते आछु ।
लेहि सजग होइ अगमन मन पछिताव न पाछु ॥३॥

बिनवै रतनसेन कै माया । माथे छात, पाट निति पाया ॥
बिलसहु नौ लख लच्छि पियारी । राज छाँड़ि जिनि होहु भिखारी ॥
निति चंदन लागै जेहि देहा । सो तन देख भरत अब खेहा ॥
सब दिन रहेहु करत तुम भोगू । सो कैसे साधब तप जोगू ? ॥
कैसे धूप सहब बिनु छाहाँ । कैसे नींद परिहि भुइँ माहाँ ? ॥
कैसे ओढ़ब काथरि कंथा । कैसे पाँव चलब तुम्ह पंथा ? ॥
कैसे सहब खिनहि खिन भूखा । कैसे खाब कुरकुटा रूखा ? ॥
राजपाट, दर, परिगह तुम्ह ही सौं उजियार ।
बैठि भोग रस मानहु कै न चलहु अँधियार ॥४॥

मोहिं यह लोभ सुनाव न माया । काकर सुख, काकर यह काया ॥
जो निआन तन होइहि छारा । माटिहि पोखि मरै को भारा ? ॥
का भूलौं एहि चंदन चोवा । बैरी जहाँ अंग कर रोवाँ ॥
हाथ, पाँव, सरवन औ आँखी । ए सब उहाँ भरहिं मिलि साखी ॥
सूत सूत तन बोलहिं दोखू । कहु कैसे होइहि गति मोखू ॥
जौं भल होत राज औ भोगू । गोपिचंद नहिं साधत जोगू ॥
उन्ह हिय-दीठि जो देख परेवा । तजा राज कजरी-बन सेवा ॥

देखि अंत अस होइहि गुरू दीन्ह उपदेस ।
सिंघलदीप जाब हम माता देहु अदेस ॥ ५ ॥

रोवहिं नागमती रनिवासू । केइ तुम्ह कंत दीन्ह बनबासू ॥
अब कों हमहिं करहि भोगिनी । हमहूँ साथ होब जोगिनी ॥
की हम लावहु अपने साथा । की अब मारि चलहु सेइ साथा ॥
तुम्हँ अस बिछुरै पीउ पिरीता । जहँवाँ राम तहाँ सँग सीता ॥
जौ लहि जिउ सँग छाँड़ न काया । करिहौं सेव, पखरिहौं पाया ॥
भलेहि पदमिनी रूप अनूपा । हमतें कोइ न आगरि रूपा ॥
भँवै भलेहि पुरुखन कै डीठी । जिनहिं जाब तिन्ह दीन्ही पीठी ॥

देहिं असीस सबै मिलि तुम्ह माथे निति छात ।
राज करहु चितउरगढ़ राखहु पिय अहिवात ॥६॥

तुम्ह तिरिया मति हीन तुम्हारी । मूरुख सो जो मतै घर नारी ॥
राघव जो सीता सँग लाई । रावन हरी, कौन सिधि पाई ?॥
यह संसार सपन कर लेखा । बिछुरि गए जानों नहिं देखा ॥
राजा भरथरि सुना जो ज्ञानी । जेहि के घर सोरह सै रानी ॥
सुख लीन्हे तरवा सहराई । भा जोगी, कोउ संग न लाई ॥
जोगिहि काह भोग सौं काजू । चहै न धन घरनी औ राजू ॥
जूड़ कुरकुटा भीखहि चाहा । जोगी तात भात कर काहा ?॥
कहा न मानै राजा तजी सबाईं भीर ।
चेला छाँड़ि कै रोवत फिरि कै देइ न धीर ॥७॥

बादल और उसकी माता का संवाद

बादल केरि जसोवै माया । आइ गहेसि बादल कर पाया ॥
'बादल राय ! मोर तुइ बारा । का जानसि कस होइ जुझारा ॥
बादसाह पुहुमी-पति राजा । सनमुख होइ न हमीरहि छाजा ॥
छत्तिस लाख तुरय दर साजहिं । बीस सहस हस्ती रन गाजहिं ॥
जबहीं आइ चढ़ै दल ठटा । दीखत जैसे गगन घन घटा ॥
चमकहि खड़ग जो बीजु समाना । घुमरहिं गलगाजहिं नीसाना ॥
बरिसहि सेल बान घनघोरा । धीरज धीर न बाँधिहि तोरा ॥

जहाँ दलपती दलि मरहिं, तहाँ तोर का काज ?
आजु गवन तोर आवै, बैठि मानु सुख राज ॥१॥

मातु ! न जानसि बालक आदी । हौं बादला सिंघ रनबादी ॥
सुनि गज-जूह अधिक जिउ तपा । सिंघ क जाति रहै किमि छपा ॥
तौलगि गाज, न गाज सिंघेला । सौंह साह सौं जुरौं अकेला ॥
को मोहि सौंह होइ मैमंता । फारौं सूँड़, उखारौं दंता ॥
जुरौं स्वामि सँकरे जस ढारा । पेलौं जस दुरजोधन भारा ॥
अंगद कोपि पाँव जस राखा । टेकौं कटक छतीसौ लाखा ॥
हनुवँत सरिस जंघ बर जोरौं । दहौं समुद्र, स्वामि-बँदि छोरौं ॥

सो तुम, मातु जसोवै ! मोहिं न जानहु बार ।
जहँ राजा बलि बाँधा छोरौं पैठि पतार ॥ २ ॥

(पद्मावत)

संसार की निस्सारता

ना–निसता जो आपु न भएऊ। सो एहि रसहि मारि विष किएऊ॥
यह संसार झूठ, थिर नाहीं। उठहि मेघ जेउँ जाइ बिलाहीं॥
जो एहि रस के बाएँ भएऊ। तेहि कहँ रस बिषभर होइ गएऊ॥
तेइ सब तजा अरथ बेवहारू। औ घर बार कुटुम परिवारू॥
खीर खाँड़ तेहि मीठ न लागै। कहै बार होइ भिच्छा माँगै॥
जस जस नियर होइ वह देखै। तस तस जगत हिया महँ लेखै॥
पुहुमी देखि न लावै दीठी। हेरै नवै न आपनि पीठी॥

छोड़ि देहु सब धँधा काढि जगत सौं हाथ।
घर माया कर छोड़ि कै धरु काया कर साथ॥

× × ×

ना–तप साधहु एक पथ लागे। करहु सेव दिन राति, सभागे!॥
ओहि मन लावहु, रहै न रूठा। छोड़हु झगरा, यह जग झूठा॥
जब हँकार ठाकुर का आइहि। एक घरी जिउ रहै न पाइहि॥
ऋतु बसंत सब खेल धमारी। दगला अस तन, चढ़ब अटारी!॥
सोइ सोहागिनि जाहि सोहागू। कंत मिलै जो खेलै फागू॥
कै सिंगार सिर सेंदुर मेलै। सबहि आइ मिलि चाँचरि खेलै॥
औ जो रहै गरब कै गोरी। चढ़ै दुहाग, जरै जस होरी॥

(अखरावट)

महात्मा सूरदास

महात्मा सूरदास का जन्म संवत् १५४० के लगभग माना जाता है। मथुरा और आगरे के बीच रुनकता (रेणुका क्षेत्र) इनका जन्म-स्थान कहा जाता है। 'भक्तमाल' और 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' से ज्ञात होता है कि ये सारस्वत ब्राह्मण थे, पर कुछ विद्वान् इन्हें चंदवरदाई का वंशज ब्रह्मभट्ट मानते हैं। कहा जाता है कि ये पहले गऊघाट (मथुरा और आगरे के बीच) पर रहा करते थे। एक बार महाप्रभु वल्लभाचार्य वहाँ पहुँचे और सूरदास का एक सुन्दर पद सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। आचार्य जी ने इन्हें अपना शिष्य बना लिया। उन्हीं की प्रेरणा से सूरदास ने श्रीमद्भागवत की कथाओं का वर्णन सुन्दर गाने योग्य पदों में किया। उनकी सच्ची भक्ति और अनूठी कवित्व शक्ति देख आचार्य जी ने इन्हें गोवर्द्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी के मन्दिर की कीर्त्तन-सेवा का कार्य सौंपा। कुछ लोग इन्हें जन्मान्ध मानते हैं, परन्तु इनके पदों में इनकी सूक्ष्म प्रकृति-पर्यवेक्षण-शक्ति को देख यही मानना पड़ता है कि इन्होंने संसार की रंगस्थली का निरीक्षण स्वयं अपनी आँखों से किया होगा।

वल्लभाचार्य की मृत्यु संवत् १५८७ में हुई। उनके पश्चात् उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ गद्दी पर बैठे। उनके समय तक अनेक कृष्ण-भक्त कवि हो चुके थे। उन्होंने आठ सर्वोत्तम कवियों को चुनकर 'अष्टछाप' की प्रतिष्ठा की। 'अष्टछाप' के कवियों में सूरदास को सर्वोच्च स्थान दिया गया। इनकी मृत्यु गोस्वामी विट्ठलनाथ के समक्ष पारसोली ग्राम में

हुई। गोस्वामी विट्ठलनाथ की मृत्यु संवत् १६४२ में हुई। अतः इसके पूर्व ही सूरदास की मृत्यु हुई होगी।

सूरदास के पदों का विशाल संग्रह 'सूरसागर' नाम से प्रसिद्ध है। 'सूरसागर' के अतिरिक्त इन्होंने 'सूरसारावली', 'साहित्यलहरी', 'व्याहलो', 'नलदमयन्ती' और 'नागलीला' ये पाँच ग्रन्थ और लिखे जिन में से केवल 'सूरसारावली' और 'साहित्यलहरी' प्राप्य हैं। 'सूरसागर' इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसमें सवा लाख के लगभग पद कहे जाते हैं, किन्तु अभी तक लग-भग पाँच हज़ार पद ही उपलब्ध हो सके हैं। वैसे तो 'सूरसागर' में श्रीमद्भागवत के सभी स्कन्धों की कथाएँ पदों में गायी गई हैं, पर सूरदास का विशेष ध्यान दशम स्कन्ध में वर्णित श्रीकृष्ण की बाललीलाओं और उनके प्रति गोपियों के प्रेम की ओर ही गया है। अन्य प्रसंगों को एक दो पदों में वर्णन कर ही छोड़ दिया गया है। दशम स्कन्ध में वर्णित कृष्ण की बाललीला और यौवनक्रीड़ा के आधार पर उन्होंने जिन पदों की रचना की है उनमें ही उनकी प्रतिभा का पूर्ण चमत्कार दिखाई देता है।

मुक्तक पदों की रचना में सूर बड़े कुशल थे। उन्होंने अपने इष्टदेव के जिस रूप को ग्रहण किया वह मुक्तक पदों के लिए ही उपयुक्त था। श्रीकृष्ण के चरित्र में मानव-जीवन की वह अनेकरूपता न थी जो एक प्रबन्ध-काव्य के लिए आवश्यक है। सूरदास ने कृष्ण की बाल्यावस्था और युवावस्था की लीलाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। 'सूरसागर' के 'विनय', 'बालकृष्ण' और 'भ्रमर-गीत' इन तीन प्रसंगों में सूर की कवित्व शक्ति और उनका व्यक्तित्व वास्तविक रूप में अन्तर्हित है। हां, 'विनय' में तुलसीदास जी जितने सफल हुए हैं, उतने सूरदास नहीं।

किन्तु तुलसीदास को छोड़ दूसरा कोई भी इस विषय में इनकी समानता नहीं कर सकता। सूरदास श्रीकृष्ण के सख्यभाव के उपासक थे, इसलिए उनके विनय-सम्बन्धी पदों में कहीं कहीं ढिठाई की व्यंजना बड़ी सुन्दर हुई है। कई पदों में तो उन्होंने भगवान् के आगे अपना हृदय खोलकर रख दिया है। 'विनय' प्रसंग में वे एक अनन्य भगवद्भक्त के रूप में हमारे सामने आते हैं।

बाल-लीला के वर्णन में तो सूरदास अद्वितीय हैं। उन्होंने बालक कृष्ण के हाव-भावों और उनकी चेष्टाओं का सुन्दर सजीव चित्र अंकित किया है। बाल-लीला-संबन्धी प्रत्येक पद में पुत्र-हृदय और मातृ-हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का बहुत सुन्दर विश्लेषण किया गया है। बाल-प्रकृति का उन्हें असाधारण ज्ञान था। गोस्वामी तुलसीदास ने भी गीतावली में बाललीला का वर्णन किया है, पर उनके वर्णनों में रूपवर्णन ही प्रधान है। बालकों की चेष्टाओं और उनके भावों तक उनकी इतनी पहुँच नहीं थी जितनी कि सूर की। निम्नलिखित पदों में बालचेष्टा के कितने सुन्दर और स्वाभाविक चित्र चित्रित हुए हैं :—

"सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुन चलत, रेनु-तन मंडित, मुख दधि-लेप किए॥"

"जेंवत स्याम नंद की कनियाँ।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत, छवि निरखति नँदरनियाँ॥"

"किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत
मनिमय कनक नंद के आँगन, बिंब पकरिबे धावत॥"

बाललीलावर्णन में सूर ने कृष्ण का मचलना, उनका खीझना, उनका

रोना, उनकी भीरु प्रकृति आदि का जीता जागता चित्र खींच दिया है।

वात्सल्य के अतिरिक्त शृंगार-वर्णन में भी सूरदास ने अपनी कवित्व-शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। संयोग-शृंगार की अपेक्षा वियोग-शृंगार के वर्णन में उन्हें अधिक सफलता मिली है। गोपियों के विरह-वर्णन में उन्होंने गोपियों के व्याकुल हृदय की झाँकी बड़े मार्मिक शब्दों में उतारी है। वहां उनकी प्रतिभा सूक्ष्म से सूक्ष्म बन कर गोपियों के अन्तस्तल में प्रवेश करती हुई दिखाई देती है। उनके विरह-सम्बधी पद अनूठे हैं। उद्धव-गोपिका-संवाद, जो कि 'भ्रमर-गीत' नाम से प्रसिद्ध है, हिन्दी-साहित्य में एक अद्वितीय प्रसंग है। उसमें गोपियों का वाग्वैदग्ध्य अत्यन्त मनोहर है। कृष्ण-प्रेमी गोपियों को उद्धव का उपदेश अखरने लगता है और वे इन शब्दों में उन्हें खरी खरी सुनाती हैं:-

"निरगुन देस कौन को बासी।"

"ऊधौ, कोउ नाहिन अधिकारी।"

वियोग प्रेम की कसौटी है। गोपियों का सच्चा प्रेम दुस्सह वियोग में भी अक्षुण्ण रहता है। सूरदास ने यही प्रेम सुन्दर शब्दों में प्रकट किया है। प्रेम के तीनों स्वरूपों--भगवद्भक्ति, वात्सल्य और दाम्पत्य प्रेम—का वर्णन उन्होंने क्रमशः 'विनय', 'बाललीला' और 'भ्रमर-गीत इन तीन प्रसंगों में किया है। इन तीनों प्रसंगों में सूर अपने वास्तविक रूप में दिखाई देते हैं। विनय-सम्बन्धी पदों में वे एक अनन्य भक्त हैं, बाललीला-वर्णन में वे स्वयं नंद और यशोदा के रूप में लाड़ लड़ाते हुए दिखाई देते हैं और 'भ्रमरगीत' में वे साक्षात् गोपियों के रूप में उद्धव से तर्क करते हुए हमारे सम्मुख आते हैं।

सूर की भाषा व्रजभाषा है। उन्होंने तुकबन्दी के लिए शब्दों को इतना विकृत कहीं नहीं बनाया जिससे उनका मूलरूप ही नष्ट हो जाय। उनकी भाषा में सरसता और लालित्य पर्याप्त है। उनके पदों में मधुर संगीत है। इसीलिए उनके पद संगीत-प्रेमियों के कण्ठहार बने हुए हैं। ध्वनि और व्यंग भी सूर के काव्य में पर्याप्त हैं। भ्रमरगीत में तो पद पद पर इनका प्रयोग हुआ है। उनके मुख्य अलङ्कार उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा हैं। वे स्वाभाविक गति से अपने आप उनके पदों में समाविष्ट हो गए हैं। उन्होंने अलंकारों के पीछे अपने भावों को नष्ट नहीं किया है। कला की दृष्टि से उनका काव्य उत्कृष्ट है। तभी तो उनके पदों के विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है:—

"किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत सरीर॥"

विनय

(१)

अब कै माधव, मोहिं उधारि।
मगन हौं भव-अम्बुनिधि में, कृपा-सिन्धु मुरारि॥
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लियें जात अगाध जल में गहे ग्राह-अनंग॥
मीन इन्द्रिय अतिहि काटति, मोट अघ सिर भार।
पग न इत-उत धरन पावत, उरझि मोह-सिवार॥
काम क्रोध समेत तृष्णा, पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर॥
थक्यो बीच बिहाल बिह्वल, सुनहु करुना-मूल।
स्याम, भुजगहि काढ़ि डारहु, सूर ब्रज के कूल॥

(२)

प्रभु, हौं सब पतितन कौ राजा।
पर-निन्दा मुख पूरि रह्यौ जग, यह निसान निज बाजा॥
तृष्णा देस रु सुभट मनोरथ, इन्द्रिय खडग हमारे।
मंत्री काम कुमत दैवे कौं, क्रोध रहत प्रतिहारे॥
गज अहँकार चढ्यौ दिग-बिजयी, लोभ छत्र धरि सीस।
फौज असत संगति की मेरी, ऐसो हौं मैं ईस॥

मोह मदै बंदो गुन गावत, मागध दोष अपार।
सूर, पाप कौ गढ़ दृढ़ कीने, मुहकम लाय किंवार॥

(३)

कब तुम मोसो पतित उधारो।
पतितनि में विख्यात पतित हौं, पावन नाम तिहारो॥
बड़े पतित पासंगहुँ नाहीं, अजमिल कौन बिचारो।
भाजै नरक नाम सुनि मेरो, जमनि दियो हठि तारो॥
छुद्र पतित तुम तारि रमापति, जिय जु करौ जनि गारो।
सूर, पतित कों ठौर कहूँ नहिं, है हरि-नाम सहारो॥

(४)

अब हौं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा सब्द रसाल।
भरम भर्यौ मन भयौ पखावज, चलत कुसंगति-चाल।
तृसना नाद करति घट अन्तर, नानाबिध दै ताल।
माया कौ कटि फैंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियो भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौ नन्दलाल॥

(५)

आछौ गात अकारथ गार्यौ।
करी न प्रीति कमल-लोचन सों, जनम जनम ज्यौं हार्यौ॥
निसि-दिन विषय-विलासनि बिलसत फूटि गईं तुअ चार्यौ।

अब लाग्यौ पछितान पाय दुख दीन दई कौ मारयौ ॥
कामी कृपन कुचील कुदरसन, को न कृपा करि तारयौ ।
तातें कहत दयालु देव पुनि, काहे सूर बिसारयौ ॥

(६)

माधव जो जन तें बिगरे ।
तउ कृपाल करुनामय केसव, प्रभु नहिं जीय धरै ॥
जैसें जननि-जठर-अन्तरगत, सुत अपराध करै ।
तौऊ जतन करै अरु पोषै, निकसैं अंक भरै ॥
जद्यपि मलय बृच्छ जड़ काटै, कर कुठार पकरै ।
तऊ सुभाव सुगन्ध सुशीतल, रिपु-तन-ताप हरै ।
धर विधंसि नल करत किरसि हल वारि बीज बिथरै ॥
सहि सनमुख तउ शीत-उष्ण कों सोई सफल करै ।
रसना द्विज दलि दुखित होति बहु, तउ रिस कहा करै ।
छमि सब छोभ जु छाँड़ि छवौ रस लै समीप सँचरै ॥
कारन-करन दयाल दयानिधि निज भय दीन डरै ।
इहि कलिकाल व्याल-मुख-ग्रासित सूर सरन उबरै ॥

(७)

सोइ रसना, जो हरिगुन गावै ।
नैनन की छवि यहै चतुरता जो मुकंद मकरंदहिं धावै ॥
निर्मल चित तौ सोई साँचौ कृष्ण बिना जिहि और न भावै ।
स्रवननि की जु यहै अधिकाई, सुनि हरि-कथा सुधारस प्यावै ॥
कर तेई जे स्यामहि सेवैं, चरननि चलि बृन्दावन जावैं ।
सूरदास, जैये बलि ताकी, जो हरि जू सों प्रीति बढ़ावै ॥

(८)

सरन गये को को न उबारयो।

जब जब भीर परी भक्तन पै, चक्र सुदरसन तहाँ संभारयो ॥

महाप्रसाद भयो अँबरीप कों, दुरवासा कौ क्रोध निवारयौ।

ग्वालिन हेत धरयौ गोवर्धन प्रगट इन्द्र कौ गर्व प्रहारयौ।

कृपा करी प्रहलाद भक्त पै खम्भ फारि हिरनाकुस मारयौ।

नरहरि-रूप धरयौ करुनाकर छिनक मांहिं उर नखनि बिदारयौ ॥

ग्राह ग्रसित गज कौं जल बूड़त नाम लेत वाको दुख टारयौ।

सूर स्याम बिनु और करै कों, रंगभूमि में कंस पछारयौ ॥

(९)

कीजै प्रभु अपने विरद की लाज।

महापतित कबहुँ नहिं आयौ, नैकु तिहारे काज ॥

माया सबल धाम-धन-बनिता बाँध्यौ हौं इहि साज।

देखत सुनत सबै जानत हौं, तऊ न आयौ बाज ॥

कहियत पतित बहुत तारे स्रवननि सुनी अवाज।

दई न जाति-खेवट उतराई, चाहत चढ्यौ जहाज ॥

लीजै पारि उतारि सूर कों महाराज ब्रजराज।

नई न करन कहत, प्रभु तुम हौ सदा गरीब निवाज ॥

(१०)

धोखैं ही धोखैं डहकायौ।

समुझि न परी विषय-रस गीध्यौ, हरि-हीरा घर माँझ गँवायौ ॥

ज्यौं कुरंग जल देखि अवनि कौ प्यास न गई, दसौं दिसि धायौ।

जनम-जनम बहु करम किये हैं, तिन में आपुन आपु बँधायौ ॥
ज्यौं सुक सेमर-फल आसा लगि, निसि-बासर हठि चित्त लगायौ ।
रीतौ पर्यौ जबै फल चाख्यौ, उडि गयौ तूल, ताँबरो आयौ ॥
ज्यौं कपि डोरि बाँधि बाजीगर कन कन कों चौहटें नचायौ ।
सूरदास, भगवंत भजन बिनु काल-व्याल पै आपु खवायौ ॥

(११)

मेरो मन अनन्त कहाँ सुख पावै ।
जैसे उडि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै ॥
कमल-नैन कौ छाँडि महातम ओर देव को ध्यावै ।
परम गंग को छाँडि पियासौ दुर्मति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील-फल खावै ।
सूरदास, प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥

(१२)

प्रभु, मेरे औगुन चित न धरौ ।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो, अपने पनहिं करौ ॥
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परौ ।
यह दुविधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ ॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरौ ।
जब मिलिकैं दोउ एक बरन भये, सुरसरि-नाम परौ ॥
एक जीव इक ब्रह्म कहावत, सूरस्याम झगरौ ।
अब की बेर मोहिं पार उतारौ, नहिं पन जात टरौ ॥

(१३)

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।
जेहिं तनु दियौ ताहिं बिसरायौ, ऐसो नौनहरामी ॥
भरि भरि उदर विषय कौं धावौं, जैसें सूकर ग्रामी ।
हरिजन छाँडि हरी-विमुखन की निसि-दिन करत गुलामी ॥
पापी कौन बड़ौ है मोतें, सब पतितन में नामी ।
सूर, पतित कौं ठौर कहाँ है, सुनिए श्रीपति स्वामी ॥

(१४)

मन तोसौं कोटिक बार कही ।
समुझि न चरन गहे गोबिंद के, उर अघ-सूल सही ॥
सुमिरन ध्यान कथा हरिजू की, यह एकौ न रही ।
लोभी लंपट विषयिनि सौं हित, यौं तेरी निबही ॥
छाँडि कनक-मनि रत्न अमोलक, काँच की गही ।
ऐसौ तू है चतुर बिवेकी, पय तजि पियत मही ॥
ब्रह्मादिक रुद्रादिक रवि ससि देखे सुर सब ही ।
सूरदास, भगवंत-भजन बिनु, सुख तिहुँ लोक नहीं ॥

(१५)

जापर दीनानाथ ढरै ।
सोइ कुलीन, बड़ौ सुंदर सोइ, जिहिं पर कृपा करै ॥
राजा कौन बड़ौ रावन तें, गर्वहिं गर्व गरै ।
कौन बिभीषन रंक निसाचर, हरि हँसि छत्र धरै ॥
रंकव कौन सुदामाहू तें आपु समान करै ।

अधम कौन है अजामील तें, जम तहँ जात डरै ॥
कौन विरक्त अधिक नारद तें, निसि-दिन भ्रमत फिरै ।
अधिक कुरूप कौन कुबिजा तें, हरि पति पाइ तरै ॥
अधिक सुरूप कौन सीता तें जनम वियोग भरै ।
जोगी कौन बड़ौ संकर तें ताको काम छरै ॥
यह गति मति जानै नहिं कोऊ, केहिं रस रसिक ढरै ।
सूरदास, भगवन्त-भजन बिनु, फिरि फिरि जठर जरै ॥

वात्सल्य

(१)

सुत-मुख देखि जसोदा फूली ।
हरषित देखि दूध की दँतुली, प्रेम-मगन तन की सुधि भूली ॥
बाहरि तें तब नंद बुलाए "देखौ धौं सुन्दर सुखदाई ।
तनक-तनक-सी दूध दँतुलियाँ, देखौ नैन सफल करौ आई ॥"
आनंद सहित महर तब आये, मुख चितवत दोउ नैन अघाई ।
सूर, स्याम किलकत द्विज देखे, मनौं कमल पर बिज्जु जमाई ॥

(२)

खेलत नंद-आँगन गोविंद ।
निरखि निरखि जसुमति सुख पावति बदन मनोहर चंद ॥
कटि किंकनी कंठमनि की द्युति, लट मुकुता भरि माल ।
परम सुदेस कंठ केहरि नख, बिच बिच बज्र प्रवाल ॥

करनि पहुँचियाँ, पग पैजनियाँ, रज-रंजित पटपीत।
घुटुरनि चलत, अजिर में विहरत, मुख मंडित नवनीत॥
सूर, बिचित्र कान्ह की बानिक, कहति नहीं बनि आवै।
बाल दसा अवलोकि सकल मुनि जोग बिरति बिसरावै॥

(३)

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद के आँगन बिंब पकरिवे धावत॥
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौं, कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजति द्वै दँतियाँ पुनि पुनि तिहिं अवगाहत॥
कनकभूमि पर कर-पग छाया, यह उपमा इक राजत।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा कमल वैठकी साजत॥
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा पुनि पुनि नंद बुलावति।
अँचरा तर लै ढाँकि सूर प्रभु, जननी दूध पियावति॥

(४)

कहाँ लौं बरनौं सुंदरताई।
खेलत कुँवर कनक-आँगन में, नैन निरखि छवि छाई॥
कुलहि लसति सिर स्याम सुभग अति बहुविधि सुरंग बनाई।
मानौं नव घन ऊपर राजत मघवा-धनुप चढाई॥
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन मोहन मुख बगराई।
मानौं प्रगट कंज पर मंजुल अलि-अवली फिरि आई॥
नील सेत पर पीत लालमनि लटकन भाल लुनाई।
सनि गुरु-असुर देव-गुरु मनि मनौं भौम सहित समुदाई॥

दूध दंत-दुति कहि न जाति अति अद्भुत इक उपमाई ।
किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनु घन में विज्जु छपाई ॥
खंडित बचन देत पूरन सुख अलप अलप जलपाई ।
घुटुरुन चलत रेनु तन-मंडित सूरदास बलि जाई ॥

(५)

कहन लगे मोहन 'मैया मैया' ।
पिता नंद सों 'बाबा बाबा', अरु हलधर सों 'भैया' ॥
ऊँचे चढ़ि-चढ़ि कहति यशोदा, लै लै नाम कन्हैया ।
दूरि कहूँ जिनि जाहु ललारे, मारैगी काहू की गैया ॥
गोपी ग्वाल करत कौतूहल घर घर लेत बलैया ।
मनि-खंभनि प्रतिबिंब बिलोकत नचत-कुँवर निज पैया ॥
नंद जसोदाजू के उर तें इहि छबि अनत न जैया ।
सूरदास, प्रभु तुम्हरे दरस कों, क्यों न जाइ बलि मैया ॥

(६)

लैहौं री माँ, चंदा लहौंगो ।
कहा करौं जलपुट-भीतर कौ, बाहर ब्यौंकि गहौंगो ॥
यह तौ झलमलात झकझोरत कैसें कै जु चहौंगो ।
वह निपट निकट हीं दीसत बरज्यौं हौं न रहौंगो ॥
तुम्हारौ प्रेम प्रगट मैं जानत, बौराए न बहौंगो ।
सूर, स्याम कहै कर गहि ल्याऊं ससि तन-ताप दहौंगो ॥

(७)

ठाढी अजिर जसोदा अपने सुतहिं चंदा दिखरावति ।
रोवत कत, बलि जाऊँ तुम्हारी, देखौं धौं भरी नैन जुडावति ॥

चितै रहे तब आपुन ससि तन, अपने कर लै-लै जु बतावत।
मीठो लगत किधौं यह खाटो, देखत अति सुंदर मन भावत॥
मन ही मन हरि बुद्धि करत है, माता कों कहि ताहि मंगावत।
लागी भूख, चंद मैं खैहौं, देहु देहु, रिस करि बिरुझावत॥
जसुमति कहति, कहा मैं कीनों, रोवत मोहन अति दुख पावत।
सूर, स्याम को जसुधा बोधति, गगन चिरैयां उडत लखावत॥

(८)

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल कौ लीन्हौं, तू जसुमति कब जायौ॥
कहा कहौं, इहिं रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तेरो तात॥
गोरे नंद, जसोदा गोरी, तू कत स्याम सरीर।
चुटकी दै-दै हंसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर॥
तू मोहीं कों मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन-मुख रिस की बातैं जसुमति सुनि सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत।
सूर, स्याम मोहिं गो-धन की सौं, हौं माता, तू पूत॥

(९)

खेलन दूरि जात कित कान्हा।
आजु सुन्यौ, बन हाऊ आयौ, तुम नहिं जानत नान्हा॥
इक लरिका अबहीं भजि आयौ, बोलि बुझावहुँ ताहि।
कान काटि वह लेत सबनि के लरिका जानत जाहि॥

चलिए बेगि सबेर सबै भजि अपने-अपने धाम।
सूरदास, यह बात सुनत हीं बोलि लिये बलराम॥

(१०)

जेंवत स्याम नंद की कनियाँ।
कछुक खात कछु धरनी गिरावत, छवि निरखति नँदरनियाँ॥
बरी बरा बेसन बहु भाँतिनि व्यंजन विविध अगनियाँ।
डारत खात लेत अपनें कर, रुचि मानत दधि-दनियाँ॥
मिश्री दधि माखन मिश्रित करि मुख नावत छवि-धनियाँ।
आपुन खात नंद-मुख नावत, सो छवि कहत न बनियाँ॥
जो रस नंद-जसौदा बिलसत, तो नहिं तिहुँ भुवनियाँ।
भोजन करि नँद अँचमन लीन्हौं, माँगत सूर जुठनियाँ॥

(११)

मैया री, मोहि माखन भावै।
मधु मेवा पकवान मिठाई मोहिं नाहिं रुचि आवै॥
ब्रज जुवती इक पाछैं ठाढी, सुनति स्याम की बातैं।
मन मन कहति, कबहुँ अपने घर देखो माखन खातैं॥
बैठैं जाय मथनियाँ के ढिग, मैं तब रहौं छिपानी।
'सूरदास' प्रभु अन्तरजामी, ग्वालि-मनहिं की जानी॥

(१२)

जसोदा, कहाँ लौं कीजै कानि।
दिन प्रति कैसे सही जाति हैं दूध दही की हानि॥
अपने या बालक की करनी जो तुम देखो आनि।

गोरस खाई ढूँढि सब बासन, भली परी यह बानि ॥
मैं अपने मंदिर के कोनें माखन राख्यौ जानि ।
सोई जाइ तुम्हारे लरिका लीनों है पहिंचानि ॥
बूझी ग्वालिनि, घर में आयौ नैकु न शंका मानि ।
सूर, स्याम तब उतर बनायौ, चींटी काढ़त पानि ॥

(१३)

मैया, मैं नहिं माखन खायौ ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ ॥
देखि, तुही सीके पर भाजन ऊँचे धरि लटकायो ।
तूही निरखि, नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायौ ॥
मुख-दधि पौंछि बुद्धि इक कीन्हीं, दौना पीठि दुरायौ ।
डारि साँटि मुसुकाइ जसोदा स्यामहिं कंठ लगायौ ॥
बाल-विनोद मोद मन मोह्यौ, भक्ति प्रताप दिखायौ ।
सूरदास, यह जसुमति कौ सुख, सिव-बिरंचि नहिं पायौ ॥

(१४)

कुँवर जल लोचन भरि भरि लेत ।
बालक-बदन बिलोकि जसोदा, कत रिस करति अचेत ॥
छोरि कमर तें दुसह दाँवरी, डारि कठिन कर बेत ।
कहि तोकों कैसे आवतु है सिसु पर तामस एत ॥
मुख आँसू माखन के कनिका निरखि नैन सुख देत ।
मनु ससि स्रवत सुधा-कन मोती उडुगन अवलि-समेत ॥

सरबसु तौ न्यौछावरि कीजै सूर, स्याम के हेत।
ना जानौं, केहिं पुन्य प्रगट भये, इहिं ब्रज नंद-निकेत॥

(१५)

मेरे नैन निरखि सुख पावत।
सन्ध्या समय गोप-गोधन-सँग वनतें वनैं लाल ब्रज आवत॥
बलि बलि जाउँ मुखारविंद की, मंद-मंद सुन्दर गति धावत।
नटवर रूप अनूप छवीलो सब हीं के मन भावत॥
गुंजा उर बनमाल, मुकुट सिर, बेनु रसाल बजावत।
कोटि किरिन मनि मुख परकासत, उडुपति कोटि लजावत॥
चंदन खौरि काछनी की छवि सब के मनहिं चुरावत।
सूर स्याम ब्रज-नर-नारिन के नित-नित नैन सिरावत॥

(१६)

मैया, हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों, मेरे पाइ पिराँइ॥
जौ न पत्याहि पूछि बलदाउहिं अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालनि गारी देत रिसाइ॥
मैं पठवति अपने लरिका कों आवै मन बहराइ।
सूर, स्याम मेरो अति बारो मारत ताहि रिंगाइ॥

विरह

(१)

जो पै राखति हौ पहिंचानि।
तौ बारेक मेरे मोहन कौ मुख देहु दिखाई आनि॥
तुम रानी वसुदेव-गिरहिनी, हम अहीर ब्रजवासी।
पठै देहु मेरो लाल लडैतो, वारौं ऐसी हाँसी॥
भली करी कंसादिक मारे, अवसर-काज कियौ।
अब इन गैयनि कौन चरावै भरि-भरि लेत हियौ॥
खान-पान परिधान राज-सुख केतोउ लाड लडावै।
तदपि सूर मेरो अति बालक माखनहीं सचु पावै॥

(२)

पाती मधुवन ही तें आई।
सुन्दर स्याम कान्ह लिखि पठई, आइ सुनौ री माई॥
अपने अपने गृह तें दौरीं, लै पाती उर लाई।
नैननि निरखि निमेष न खंडति, प्रेम-व्यथा न बुझाई॥
कहा करौं सूनो यह गोकुल, हरि बिन कछु न सुहाई।
सूरदास, प्रभु कौन चूक तें स्याम सुरति बिसराई॥

(३)

ऊधौ, अँखियाँ अति अनुरागी।
इकटक मग जोवति अरु रोवति, भूलेहूँ पलक न लागी॥
बिनु पावस पावस रितु आई देखत हौ बिदमान।
अबधौं कहा कियौ चाहत हौ, छाँडहु नीरस ज्ञान॥

सुनु प्रिय सखा स्यामसुंदर के जानत सकल सुभाव।
जैसें मिलैं सूर प्रभु हमकों, सो कछु करहु उपाव॥

(४)

ऊधौ, मन नाहीं दस बीस।
एक हुतौ सो गयौ स्याम-संग, को अवराधै ईस॥
सिथिल भईं सबहीं माधौ बिनु जथा देह बिनु सीस।
स्वासा अटकि रही आसा लगि जीवहिं कोटि बरीस॥
तुम तौ सखा स्यामसुंदर के, सकल जोग के ईस।
सूरदास, रसिक की बतियाँ पुरवौ मन जगदीस॥

(५)

अँखियाँ हरि-दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूप-रस राँची ये बतियाँ सुनि रूखी॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब ये तौ नहिं झूखी।
अब इन जोग सँदेसनि ऊधौ, अति अकुलानी दूखी॥
बारक वह मुख फेरि दिखावहु दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर, जोग जनि नाव चलावहु ये सरिता हैं सूखी॥

(६)

ऊधौ, यह हरि कहा करयौ।
राज-काज चित दियौ साँवरे, गोकुल क्यौं बिसरयौ॥
जौ लौं घोष रहे तौ लौं हम संतत सेवा कीनी।
बारक कबहुँ उलूखल बाँधे सोइ मानि जिय लीनी?
जो तुम कोटि करौ ब्रजनायक, बहुतै राजकुमारि।

तउ ये नंद पिता कहँ मिलिहैं, अरु जसुमति महतारि ॥
कहँ गोधन, कहँ गोपबृंद सब, कहँ गोरस कौ खैबो।
सूरदास, अब सोइ करौ जिहि, होय कान्ह कौ ऐबो ॥

(७)

ऊधौ, कोउ नाहिन अधिकारी।
लै न जाहु यह जोग आपनो, कत तुम होत दुखारी॥
यह तौ वेद-उपनिषद कौ मत, महापुरुष व्रतधारी।
हम अबला अहीरि ब्रजबासिनि, देखौ हृदय बिचारी ॥
को है सुनत, कहत कासौं हौ, कौन कथा-अनुसारी।
सूर, स्याम सँग जात भयौ मन अहि काँचुली उतारी ॥

(८)

ऊधौ, हम लायक सिख दीजै।
यह उपदेस अगिनि तें तातो, कहौ कौन विधि कीजै॥
तुमहीं कहौ, इहाँ इतननि में सीखनहारी को है।
जोगी जती रहित माया तें तिनहीं यह मत सोहै॥
कहा सुनत बिपरीत लोक में यह सब कोई कैहै।
देखौ धौं अपने मन सब कोइ तुमहीं दूषन दैहै॥
चन्दन अगरु सुगंध जे लेपत, का बिभूति तन छाजै।
सूर, कहौ सोभा क्यों पावै आँखि आँधरो आँजै॥

(९)

निरगुन कौन देस कौ बासी।
मधुकर कहि समुझाइ, सौंह दै बूझति साँच न हाँसी॥

को है जनक, जननि को कहियत कौन नारि को दासी।
कैसो बरन, भेष है कैसो, केहि रस में अभिलाषी॥
पावैगो पुनि कियौ आपनो जो रे कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठगो-सौ सूर सबै मति नासी॥

(१०)

ऊधौ, इतनी कहियो जाइ।
अति कृसगात भईं ये तुम बिनु परम दुखारी गाइ॥
जल-समूह बरषतिं दोउ आँखनि, हूँकतिं लीनें नाऊँ।
जहाँ-जहाँ गो-दोहन कीनौ सूँघतिं सोई ठाऊँ॥
परतिं पछार खाइ छिन हीं छिन अति आतुर ह्वै दीन।
मानहुँ सूर काढि डारी हैं वारि मध्य तें मीन॥

(११)

कहाँ लौं कहिए ब्रज की बात।
सुनहु स्याम, तुम बिनु उन लोगनि जैसें दिवस बिहात॥
गोपी गाइ ग्वाल गो-सुत वै मलिन बदन कृस गात।
परमदीन जनु सिसिर-हिमी-हत अंबुज-गन बिनु पात।
जो कहुँ आवत देखि दूरि तें पूँछत सब कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर, कर चरननि लपटात॥
पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस बलिहिं न खात।
सूर, स्याम संदेसनि के डर पथिक न उहिं पग जात॥

(१२)

ऊधो, मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
बृंदावन गोकुल तन आवत सघन तृनन की छाहीं॥
प्रात समय माता जसुमति अरु नंद देखि सुख पावत।
माखन-रोटी दह्यो सजायौ अति हित साथ खवावत॥
गोपी ग्वाल-बाल संग खेलत सब दिन हँसत सिरात।
सूरदास, धनि-धनि ब्रजबासी जिनसों हँसत ब्रजनाथ॥

(१३)

अब या तनुहिं राखि कहा कीजै।
सुनि री सखी स्यामसुंदर बिनु बाँटि विषम विष पीजै॥
कै गिरिए गिरि चढ़ि सुनि सजनी सीस संकरहिं दीजै।
कै दहिए दारुन दावानल जाइ जमुन धँसि लीजै॥
दुसह वियोग अरी, माधव कौ तनु दिन हीं दिन छीजै।
सूर, स्याम अब कबधौं मिलि हैं, सोचि सोचि जिय जीजै॥

(१४)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करि दीपक सों, आप देह दह्यौ॥
अलि-सुत प्रीति करी जल-सुत सों, संपुट माँझ गह्यौ।
सारँग प्रीति जो करी नाद सों, सनमुख बान सह्यौ॥
हम जो प्रीति करी माधव सों चलत न कछू कह्यौ।
सूरदास, प्रभु-बिनु दुख पावति नैननि नीर बह्यौ॥

गोस्वामी तुलसीदास

हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-काल के विषय में विद्वानों का मतभेद है। 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार इनका जन्म संवत् १५८३ में हुआ। 'गोसाईं चरित्र' और 'तुलसी-चरित्र' में इनका जन्म संवत् १५५४ दिया गया है। मिरजापुर के रामभक्तों की जनश्रुति के अनुसार गोस्वामी जी का जन्म संवत् १५८९ में हुआ था। डा० ग्रियर्सन तथा अन्य कई विद्वानों ने भी इनका जन्म संवत् १५८९ में ही स्वीकार किया है।

गोस्वामी जी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था। संयुक्त-प्रांत के बाँदा जिले के राजापुर नामक गाँव को इनका जन्मस्थान माना जाता है। इनका जन्म अभुक्त मूल-नक्षत्र में हुआ था, इसलिए इनके माता ने इन्हें उत्पन्न होते ही त्याग दिया और पाँच वर्ष तक मुनिया नामक दासी ने इनका पालन पोषण किया। कुछ लोगों का कहना है कि गोस्वामी जी जब उत्पन्न हुए तब पाँच वर्ष के बालक के समान थे। और इनके पूरे दाँत भी गर्भ में ही निकल आए थे। इनके माता-पिता ने इन्हें राक्षस समझ कर त्याग दिया। इन कथाओं में सत्यता कहाँ तक है, यह हम नहीं कह सकते। किन्तु इनसे यह सारांश अवश्य निकाला जा सकता है कि गोस्वामी जी ने बाल्यावस्था में अनेक कठिनाइयां सहीं। इन्होंने 'कवितावली' में कहा भी है कि "मातु पिता जग जाइ तज्यो विधिहू न लिख्यो कछु भाल

भलाई।" कुछ बड़े होने पर इन्होंने नरहरिदास का आश्रय लिया। उन्होंने इन्हें शिक्षा-दीक्षा दी। नरहरिदास इन्हें अपने साथ काशी ले आए। काशी में गोस्वामी जी स्वामी रामानन्द के आश्रय में रहने लगे। वहीं इन्होंने वेद, वेदांग, दर्शन, पुराण आदि का अध्ययन किया। १५ वर्ष तक अध्ययन करने के पश्चात् गोस्वामी जी अपनी जन्मभूमि राजापुर को लौट आए, पर इस समय तक इनके परिवार में कोई भी व्यक्ति जीवित न रहा।

गोस्वामी जी का विवाह दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ था। कहा जाता है कि अपनी पत्नी पर गोस्वामी जी इतने अनुरक्त थे कि एक दिन उसके अपने मायके चले जाने पर ये भी उसके पीछे पीछे वहीं जा पहुँचे। अपने पति को वहाँ आया देख पत्नी ने लज्जित होकर इन्हें ये दोहे सुनाए:—

"लाज न आवत आपु को, दौरे आएहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चर्म-मय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्रीराम महँ, होति न तौ भव-भीति॥"

इन शब्दों का तुलसी के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसी समय ये अपना घर छोड़ कर विरक्त हो गये। इन्होंने सांसारिक प्रेम को ठुकरा कर राम-भक्ति को अपने हृदय में स्थान दिया। कई वर्षों तक काशी, अयोध्या आदि तीर्थस्थानों में भ्रमण करने के अनन्तर ये चित्रकूट में आकर रहने लगे। संवत् १६३१ में अयोध्या जाकर इन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'राम-चरित-मानस' की रचना की। 'रामचरित-मानस के

अतिरिक्त इन्होंने अन्य कई ग्रन्थ लिखे, जिनमें 'दोहावली', 'गीतावली', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली', 'पार्वती-मंगल', जानकी-मंगल और बरवै-रामायण प्रसिद्ध हैं।

तुलसीदास जी की मृत्यु संवत् १६८० में हुई।

गोस्वामी तुलसीदास एक उच्चकोटि के भक्त, समाजसुधारक और कवि थे। जिस समय ये साहित्यिक क्षेत्र में उतरे उस समय भारत में धार्मिक विप्लव मचा हुआ था। निर्गुण-पंथी सन्त कवियों का प्रभाव मन्द पड़ने लग गया था। ईश्वर का निर्गुण रूप जनसाधारण को अधिक आकृष्ट न कर सका। स्वामी रामानन्द और वल्लभाचार्य आदि विद्वान् रामभक्ति और कृष्णभक्ति के रूप में सगुणोपासना का प्रचार कर रहे थे और जनता के हृदय में भगवान् के सगुण-रूप की प्रतिष्ठा हो रही थी। श्रीकृष्ण का सगुण-रूप व्यक्तिगत साधना के लिये उपयुक्त था; उसमें समष्टिगत साधना का भाव न था। उस समय यह आवश्यकता बनी हुई थी कि जनता के सम्मुख भगवान् का कोई ऐसा रूप रखा जाय जिसमें अनेकरूपता हो, जो मंगलकारी हो और जो धर्म, जातीयता तथा लोकनीति की रक्षा कर सके। तुलसीदास ने अपने 'रामचरित-मानस' के द्वारा मर्यादा-पुरुषोत्तम राम का सगुण-रूप जनता के सामने उपस्थित कर इस आवश्यकता की पूर्ति की। 'रामचरित-मानस' एक प्रबन्ध काव्य है। उसमें हिन्दू-जाति का सर्वाङ्गीण चित्र चित्रित हुआ है। उसमें गृहस्थाश्रम का उज्ज्वल, आदर्श स्वरूप दिखाया गया है। हिन्दू-समाज में गृहस्थाश्रम का कितना महत्त्व है, यही बात इस महाकाव्य में दिखाई गई है। माता-पिता के प्रति पुत्र का कर्तव्य, भातृप्रेम, पातिव्रत-धर्म, मित्र के प्रति मित्र का

कर्तव्य आदि विषयों की इस काव्य में बड़ी सुन्दर समीक्षा की गई है। यह हमारे लिए एक धर्मग्रन्थ ही नहीं काव्य भी है। इसमें हमें शिक्षा भी मिलती है और मानसिक आनन्द भी।

गोस्वामी तुलसीदास की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दीसाहित्य को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया है। उनके समय तक हिन्दी-साहित्य में जितनी भी शैलियाँ प्रचलित थीं, उन्होंने उन सब को अपनी विविध रचनाओं में स्थान दिया है। उनकी कविता में स्वाभाविकता, सरलता और भावमयता, ये तीनों गुण वर्तमान हैं। उनका अवधी और व्रज दोनों भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था। 'रामचरितमानस' में अवधी का ही प्रयोग किया गया है किन्तु वह ठेठ अवधी नहीं उसमें संस्कृत की कोमल-कान्त पदावली का प्रयोग भी स्थान-स्थान पर मिलता है। 'विनयपत्रिका', 'गीतावली' आदि रचनाओं में उन्होंने व्रजभाषा को ही स्थान दिया है। भाषा को विषयोपयोगी बनाने में गोस्वामी जी बड़े निपुण थे। उनकी रचनाओं में शृंगार, हास्य करुण, रौद्र, वीर आदि सभी रसों का परिपाक बहुत अच्छा हुआ है। उनका शृंगार वर्णन भी सात्त्विक और सीमित है। जनकपुरी की पुष्पवाटिका में राम को देख कर सीता की दशा का चित्र इन शब्दों में अंकित किया है:—

"चितवत चकित चहुँ दिसि सीता। कहँ गए नृपकिसोर-मन-चीता॥"

उनकी कविता में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है किन्तु उनमें स्वाभाविकता है, कृत्रिमता नहीं। केवल शाब्दिक चमत्कार लाने के लिए उन्होंने अनुप्रास, यमक आदि को

कहीं भी नहीं अपनाया। इनके संवादों में नाटकीय छटा वर्तमान है। भिन्न भिन्न दृश्यों के सुन्दर, सजीव चित्र उनकी रचनाओं में भरे पड़े हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरित-मानस' के द्वारा हिन्दू-समाज को उन्नत बनाने का प्रयत्न किया। भारत में अनेक समाज-सुधारक हुए हैं किन्तु भारतीय समाज का जितना सुधार 'रामचरित-मानस' से बन पड़ा है, उतना और किसी से न हो सका। उन्होंने वैष्णव, शैव आदि विविध सम्प्रदायों में प्रचलित विरोध-भाव को दूर कर हिन्दू-जाति को एकता के सूत्र में बाँधने की चेष्टा की। कबीर जैसे सन्तकवियों ने संसार का भयावह रूप जनता के सामने रखा था। उसका परिणाम यह हुआ कि जनता सांसारिक जीवन को घृणा की दृष्टि से देखने लगी थी। गोस्वामी तुलसीदास ने मानवजीवन का आदर्श रूप समाज के सम्मुख रखा और लोक-धर्म की रक्षा की। इसीलिये वे भारतीय जनता के हृदय में आदरणीय स्थान प्राप्त किए हुए हैं। वे यथार्थ में हिन्दू-जाति के प्रतिनिधि कवि थे।

पार्वती की तपस्या

साधक कलेस सुनाइ सब, गौरिहि निहोरत धाम कों।
को सुनइ काहि सोहाइ घर, चित चहत चंद्रललाम कों॥
समुझाइ सबहिं दृढ़ाइ मन, पितु मातु आयसु पाइ कै।
लागी करन पुनि अगमु तपु, तुलसी कहै किमि गाइ कै॥ १॥

फिरेउ मातु पितु परिजन लखि गिरिजापन।
जेहि अनुरागु लागु, चितु, सोइ हितु आपन॥ २॥
तजेउ भोग जिमि रोग, लोग अहिगन जनु।
मुनि-मनसहु ते अगम, तपहि लायउ मनु॥ ३॥
सकुचहिं बसन बिभूषन, परसत जो बपु।
तेहि सरीर हर-हेतु, अरंभेउ बड़ तपु॥ ४॥
पूजहि सिवहि, समय तिहुँ करहि निमज्जन।
देखि प्रेम ब्रतु नेमु सराहहिं सज्जन॥ ५॥
नींद न भूख पियास, सरिस निसि बासरु।
नयन नीर, मुख नाम, पुलक तनु, हिय हरु॥ ६॥
कंद मूल फल असन, कबहुँ जल पवनहिं।
सूखे बेल के पात खात दिन गवनहिं॥ ७॥
नाम अपरना भयो परन जब परिहरे।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे॥ ८॥

देखि सराहहिं गिरजहि मुनिबरु मुनि बहु।
अस तप सुना न दीख कबहुँ काहू कहुँ॥ ९॥
काहू न देख्यों कहहिं यह तपु जोगु फल फल चारि का।
नहिं जानि जाइ, न कहति, चाहति काहि कुधर-कुमारिका॥
बटु वेष पेषन पेम पन ब्रत नेन ससिसेखर गए।
मनसाहि समरपेउ आपु गिरिजहि, बचन मृदु बोलत भए॥१०॥
देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ।
मोर कठोर सुभाय, हृदय खसि आयउ॥ ११॥
बंस प्रसंसि, मातु पितु कहि सब लायक।
अमिअ बचन बट बोलेउ सुनि सुखदायक॥ १२॥
"देवि! करौं कछु बिनय सो बिलगु न मानब।
कहौं सनेह सुभाय साँच जिअ जानब॥ १३॥
जनमि जगत जस प्रगटिहु मातु-पिता कर।
तीयरतन तुम उपजिहु भव-रतनागर॥ १४॥
अगम न कछु जग तुम कहँ, मोहिं अस सूझइ।
बिनु कामना कलेस कलेस न बूझइ॥ १५॥
जौ बर लागि करहु तपु तौ लरिकाइय।
पारस जो घर मिलै तौ मेरु कि जाइय?॥ १६॥
मोरे जान कलेस करिय बिनु काजहि।
सुधा कि रोगिहि चाहहि, रतन कि राजहि?"॥ १७॥
लखि न परेउ तपकारन बटु हिय हारेउ।
सुनि प्रिय बचन सखीमुख गौरि निहारेउ॥ १८॥

गौरी निहारेउ सखीमुख, रुख पाई तेहि कारन कहा।
"तप करहि हरहितु" सुनि बिहँसि बटु कहत" मुरुखाई महा॥
जेहि दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बर बावरो।
हित लागि कहौं सुभाय सो बड़ा बिषम बैरी रावरो॥१६॥

कहहु काह सुनि रीझिहु बरु अकुलीनहिं।
अगुन अमान अजाति मातु-पितु-हीनहिं॥२०॥
भीख माँगी भव खाहिं, चिता नित सोवहिं।
नाचहिं नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं॥२१॥
भाँग धतुर, अहार, छार लपटावहिं।
जोगी, जटिल, सरोष, भोग नहिं भावहिं॥२२॥
सुमुखि सुलोचनि ! हर मुखपंच तिलोचन।
बामदेव फुर नाम, काम-मद-मोचन॥२३॥
एकउ हरहि न बर गुन, कोटिक दूषन।
नरकपाल, गजखाल व्याल, विष भूषन॥२४॥
कँह राउर गुन सील सरूप सुहावन।
कहाँ अमंगल बेपु बिशेषु भयावन॥२५॥
जो सोचहि ससिकलहि सो सोचहि रौरेहि ?।
कहा मोर मन धरि न बरिय बर बौरेहि॥२६॥
हिये हेरि हठ तजहु, हठै दुख पैहहु।
ब्याह-समय सिख मोरि समुझि पछितैहहु॥२७॥

पछिताब भूत पिसाच प्रेत जनेत ऐहैं साजि कै।
जमधार सरिस निहारि सब नर नारि चलिहहिं भाजि कै॥

गज अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै।
कोउ प्रगट कोउ हिय कहहिं 'मिलवत अमिय माहुर घोरिकै'।२८

तुमहिं सहित असवार वहस जव होइहहिँ।
निरखि नगर नर नारी बिहँसि मुख गोइहहिँ ॥२९॥
बटु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ।
अचल सुता-मन-अचल बयारि कि डोलई ? ॥३०॥
साँच सनेह साँचि रुचि जो हठि फेरइ।
सावनसरित सिंधुरुख सूप सौँ घेरइ ॥३१॥
मनि बिनु फनि जल हीन मीन तनु त्यागइ।
सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ ॥३२॥
करन कटुक बटु वचन बिसिष सम हिय हए।
अरुन नयन चढ़ि भ्रु कुटि, अधर फरकत भए ॥३३॥
बोली फिरि लखि सखिहि काँप तनु थर थर।
"आलि ! बिदा करु बटुहिं बेगि, बड़ बरबर ॥३४॥
कहुँ तिय होहि सयानी सुनहिं सिख राउरि ?।
बौरेहि के अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि ॥३५॥
दोसनिधान, इसानु सत्य सबु भाषेउ।
मेटि को सकइ-सो आँकु जो विधि लिखि राखेउ ॥३६॥
को करि बादु बिबादु विषादु बढ़ावइ ?।
मीठ काहि कवि कहहिं जाहि जोइ भावइ ॥३७॥
भइ बड़ि बार आलि कहुँ काज सिधारहि।
बकि जनि उठहि बहोरि, कुजुगुति सँवारहि ॥३८॥

जनि कहहि कछु बिपरीत जानत प्रीतिरीति न बात की।
सिव-साधु निंदकु मंद अति जो सुनै सोउ बड़ पातकी" ॥
सुनि बचन सोधि सनेहु तुलसी साँच अबिचल पावनो।
भए प्रगट करुनासिंधु, संकर भाल चंद्र सुहावनो ॥२९॥

(पार्वति-मंगल)

वात्सल्य

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोच बिमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से ॥
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नयन सु खंजन-जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे ॥१॥
पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये ॥
अरबिंद सो आनन, रूपमरंद अनंदित लोचन-भृंग पिये।
मन मों न बस्यौ अस बालक जौ तुलसी जग में फल कौन जिये ? २॥
तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरी धरैं ॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन-मंदिर में बिहरैं ॥३॥
कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं ॥

कबहूँ रिसि आई कहै हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन-मंदिर में बिहरैं ॥४॥
बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर-पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की ॥
घुँघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्रान करै तुलसी, बलि जाउँ लला इन बोलन की ॥५॥
पदकंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुहीं सर पंकजपानी लिये।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं सरजूतट चौहट हाट हिये ॥
तुलसी अस बालक सों नहिं नेह कहा जप जोग समाधि किये? ।
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौ जग मैं फल कौन जिये ॥६॥
सरजू बर तीरहि तीर फिरैं रघुबीर सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसे कटि, पीत दुकूल नवीन फबै ॥
तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि, इकीस सबै।
मति-भारति पंगु भई जो निहारि, बिचारि फिरी उपमा न पबै ॥७॥

लंका दहन

बसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर,
खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं॥
तैसो कपि कौतुकी ढीलो गात कै कै,
लात के अघात सहै जी में कहै 'कूर हैं'॥
बाल किलकारी कै कै, तारी दै दै गारी देत,
पाछे लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं!

बालधी बढ़न लगी, ठौर ठौर दीन्हीं आगि,
विंध की दवारी, कैधों कोटिसत सूर हैं ॥ १ ॥
लाइ लाइ आगि भागे बाल जाल जहाँ तहाँ,
लघु ह्वै निबुकि गिरि मेरु तें बिसाल भो।
कौतुकि कपीस कूदि कनककँगूरा चढ़ि,
रावन भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो॥
तुलसी विराज्यो व्योम बालधी पसारि भारी,
देखे हहरात भट काल तें कराल भो।
तेज को निधान मानो कोटिक कृसानु भानु,
नख बिकराल, मुख तैसो रिस लाल भो ॥ २ ॥
बालधी विसाल विकराल-ज्वाल जाल मानौं,
लंक लीलिवे को काल रसना पसारी है।
कैधों व्योम-वीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है॥
तुलसी सुरेस-चाप कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधानीं जातुधानी अकुलानी कहैं,
"कानन उजार्‌यौ अब नगर प्रजारी है"॥ ३ ॥
जहाँ तहाँ बुबुक विलोकि बुबुकारी देत,
"जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,
ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे॥

हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष बृषभ छोरो,
छोरी छोरो, सोवै सो जगावो जागि जागि रे"।
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
"बार बार कह्यो पिय कपि सों न लगि रे !"॥ ४ ॥

देखि ज्वालजाल, हाहाकार दसकंध सुनि,
कह्यो 'धरो धरो', धाए बीर बलवान हैं।
लिये सूल, सेल, पास, परिघ, प्रचंड दंड,
भाजन सनीर, धीर धरे धनुबान हैं॥
तुलसी समिध सौंज लंक जज्ञकुंड लखि,
जातुधान पुंगीफल, जव तिल धान है।
स्रुवा सो लँगूल बलमूल प्रतिकूल हवि,
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनै हनुमान हैं॥ ५ ॥

गाज्यो कपि गाज ज्यों, बिराज्यो ज्वालजाल-युत,
भाजे बीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो।
'धाओ धाओ धरो' सुनि धाए जतुधानधारि,
वारिधारा उलदैं जलद ज्यों न सावनो॥
लपट झपट झहराने, हहराने, बात,
भहराने भट पर्यो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
"नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो"॥ ६ ॥

(कवितावलि)

विनय

ऐसी मूढ़ता और मन की।
परिहरि रामभगति सुरसरिता आस करत ओस कन की॥
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जाति मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचन की॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आप ने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति मन की।
तुलसीदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन का॥ १॥

मेरे रावरिये गति है रघुपति बलि जाउँ।
निलज, नीच, निरधर निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ॥
हैं घर घर बहु भरे सुसाहिब, सूझत सबनि आपनो दाउँ।
बानर-बन्धु, बिभीषन-हित बिनु कोसलपाल कहूँ न समाउँ॥
प्रनतारति-भंजन जनरंजन सरनागत पविपंजर नाउँ।
कीजै दास दास तुलसी अब कृपासिंधु बिनु मोल बिकाउँ॥ २॥

जाके प्रिय न राम बैदेहि।
सो छाँड़िए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेहि॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यौ, कंत ब्रज-बनितनि भए मुद मंगलकारी॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं॥

तुलसी सो सब भाँति परम हित पुँजी प्रान ते प्यारो।
जासौ होय सनेह रामपद; एतो मतो हमारो॥ ३॥

ताँबे सों पीठि मनहुँ तनु पायो।
नीच! मीचु जानत न सोस पर, ईस निपट बिसरायो॥
अवनि, रवनि, धन, धाम, सुहृद, सुत को न इन्हहि अपनायो।
काके भए गए सँग काके सब सनेह छल-छायो॥
जिन्ह भूपति जग जीति, बाँधि जम अपनी बाँह बसायो।
तेऊ काल कलेऊ लीन्हें, तू गिनती कब आयो?
देखु बिचारि सार का साँचो, कहा निगम निज गायो।
भजहि न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि जेहि महेस मन लायो॥ ४॥

हरि सम आपदाहरन।
नहिं कोउ सहज कृपालु दुसह-दुखसागर-तरन॥
गज निज बल अवलोकि कमल गहि गयो सरन।
दीन बचन सुनि चले गरुड़ तजि सुनाभ-धरन॥
द्रुपदसुता को लग्यो दुसासन नगन करन॥
'हा हरि पहि!' कहत पूरे पट बिबिध बरन॥
रहै जानि सुर नर मुनि कोबिद सेवत चरन।
तुलसीदास प्रभु को न अभय कियो नृग उद्धरन॥ ५॥

(विनयपत्रिका)

सत्संग का प्रभाव

साधु चरित सुभ सरिस कपासू । निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बन्दनीय जेहि जग जसु पावा ॥
मुद-मङ्गल-मय संत-समाजू । जो जग जङ्गम तीरथराजू ॥
रामभगति जहँ सुरसरि-धारा । सरसइ ब्रह्मविचार प्रचारा ॥
बिधि-निषेध-मय कलि-मल-हरनी । करमकथा रविनंदिनी बरनी ॥
हरिहरकथा बिराजति बेनी । सुनत सकल-मुद-मंगल-देनी ॥
बटु बिस्वासु अचल निज धर्मा । तीरथराज समाज सुकर्मा ॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा । सेवत सादर समन कलेसा ॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ । देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ ॥

सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधुसमाजु प्रयाग ॥

मज्जन-फल पेखिय ततकाला । काक होहिं पिक बकउ मराला ॥
सुनि आचरज करै जनि कोई । सत-संगति-महिमा नहिं गोई ॥
बालमीकि, नारद, घटजोनी । निज-निज मुखनि कही निज होनी ॥
जलचर, थलचर, नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥
मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई ॥
सो जानब सतसंग-प्रभाऊ । लोकहु वेद न आन उपाऊ ॥
बिनु सतसङ्ग बिवेकु न होई । रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसङ्गति मुद-मङ्गल-मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधातु सोहाई ॥
बिधिबस सुजन कुसंगति परहीं । फनि-मनि-सम निज गुन अनुसरहीं ॥

बिधि-हरि-हर-कबि-कोबिद-बानी। कहत साधुमहिमा सकुचानी ॥
सो मो सन कहि जात न कैसें। साकबनिक मनि-गन-गुन जैसें॥

सुमित्रा-लक्ष्मण-संवाद

परषित हृदय मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए ॥
जाइ जननि-पग नायेउ माथा। मनु रघुनन्दन-जानकि-साथा ॥
पूँछे मातु मलिन मन देखी। लषन कही सब कथा बिसेखी ॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा ॥
लषन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू ॥
माँगत बिदा समय सकुचाहीं। जान संग, बिधि, कहहि कि नाहीं ॥

समुझि सुमित्रा राम-सिय, रूपु सुशील सुभाउ।
नृपसनेह लखि धुनेउ सिरु, पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदुबानी ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही ॥
जो पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हारा काज कछु नाहीं॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहई दिवसु जहँ भानुप्रकासू ॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहि सकल प्रान की नाईं ॥
राम प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथरहित सखा सबही के ॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहि राम के नातें ॥
अस जिय जानि सङ्ग बन जाहू। लेहु तात जग जीवनु-लाहू ॥

भूरि भागभाजनु भयेहु, मोहि समेत बलि जाऊँ।
जो तुम्हरे मन छांड़ि छलु, कीन्ह रामपद ठाउँ ॥

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति-भगतु जासु सुत होई॥
नतरु बाँझ भलि, बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित-हानी॥
तुम्हरेहि भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम-सीय-पद सहज सनेहू॥
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु-सिय जासू॥
जेहि न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहै उपदेसू॥

बन-पथ में राम का ग्रामवासियों से मिलाप

पथिक अनेक मिलहिं मगु जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
राजलखन सब अंग तुम्हारे। देखि सोच अति हृदय हमारे॥
मारग चलहु पयादेहिं पाएँ। ज्योतिषु झूँठ हमारे भाएँ॥
अगमु पंथ गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी॥
करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहिं सिरु नाई॥

एहि बिधि पूँछहिं प्रेमबस, पुलकगात जलु नैन।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहिं, कहि बिनीत मृदु बैन॥

जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं। तिनहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाए। धन्य पुन्यमय परम सुहाए॥
जहँ जहँ राम-चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥

पुन्यपुंज मग-निकट-निवासी। तिन्हहिं सराहहिं सुर-पुर-बासी॥
जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं। सीता-लषन-सहित घनस्यामहिं॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव-सर-सरित सराहहिं॥
जेहि तरु-तर प्रभु बैठहि जाई। करहि कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम-पद-पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥

छाँह करहिं घन बिबुधगन, बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, रामु चले मग जाहिं॥

सीता - लषन - सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह-काज बिसारी॥
राम लखन सिय-रूप निहारी। पाइ नयन-फलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्हि सुर-मनि-ढेरी॥
एकन्हि एक बोलि सिख देहीं। लोचन-लाहु लेहु छिन एहीं॥
रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे॥
एक नयनमग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बरबानी॥

एक देखि बटछाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइअ छिनुक श्रम, गमनब अबहि कि प्रात॥

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। परम कृपालु सुसील बिसेखी॥
जानी श्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलम्बु कीन्ह बटछाहीं॥
मुदित नारिनर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा॥
एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचन्द्र-मुख-चन्द चकोरा॥

तरुन-तमाल-बरन तनु सोहा। देखत कोटि-मदन-मनु मोहा॥
दामिनि बरन लषनु सुठि नीके। नखसिख सुभग भावते जीके॥
मुनिपट कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहिं कर-कमलनि धनु-तीरा॥

जटा मुकुट सीसनि सुभग, उर भुज नयन बिसाल।
सरद-परब-बिधु-बदन बर, लसत स्वेद-कन-जाल॥

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत, थोरि मति मोरी॥
राम-लषन-सिय - सुन्दरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई॥
थके नारि नर प्रेम-पिआसे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआसे॥
सीय-समीप ग्राम-तिय जाहीं। पूँछत अति सनेह सकुचाहीं॥
बारबार सब लागहिं पाएँ। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभाय कछु पूँछत डरहीं॥
स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गवाँरी॥
राजकुँवर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने॥

स्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर सुखमा अयन।
सरद - सर्बरी - नाथ - मुख, सरद - सरोरुह नयन॥

कोटि - मनोज - लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी॥
तिनिहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल-मृग-नयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लषनु लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनबिधु अंचल ढाँकी। पियतन चितै भौंह करि बाँकी॥

खंजन मंजु तिरीछे नैननि । निजपति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि ॥
भईं मुदित सब ग्राम बधूटीं । रंकन्ह रायरासि जनु लूटीं ॥
अति सप्रेम सिय पायँ परि, बहु बिधि देहिं असीस ।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जब लगि महि अहिसीस ॥
पारबती सम पति-प्रिय होहू । देबि न हम पर छाँड़ब छोहू ॥
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी । जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी
दरसनु देब जानि निज दासी । लखी सीय सब प्रेम-पिआसी ॥
मधुर वचन कहि कहि परितोषीं । जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषीं ॥
तबहि लषन रघुबर-रुख जानी । पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदुबानी ॥
सुनत नारिनर भए दुखारी । पुलकित गात, बिलोचन बारी ॥
मिटा मोद मन, भए मलीने । बिधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने ॥
समुझि करमगति धीरजु कीन्हा । सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीना ॥
लषन जानकी-सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिए लाइ मन साथ ॥

(रामचरित-मानस)

केशवदास

केशवदास का जन्म संवत् १६१२ में और मृत्यु संवत् १६७४ के लगभग हुई। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके पिता काशीनाथ और पितामह कृष्णदत्त संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे। ओरछा-नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इंद्रजीतसिंह की सभा में इनका बहुत मान था। कहा जाता है कि सम्राट् अकबर ने एक बार राजा इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड़ रुपया जुर्माना किया था और केशवदास ने बीरबल की सहायता से यह जुर्माना माफ़ करवा दिया। इनकी रचनाओं में 'कवि-प्रिया', 'रसिक-प्रिया' और 'रामचन्द्रिका' प्रसिद्ध हैं। इन तीन ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होंने 'वीरसिंहदेव-चरित', 'विज्ञानगीता', 'रतनबावनी और 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका', ये चार ग्रन्थ और लिखे थे।

केशव का जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ जिसमें संस्कृत के बड़े बड़े विद्वान् होते चले आरहे थे। केशव भी संस्कृत के अच्छे पंडित थे। संस्कृत के साहित्य-शास्त्र से इनका अच्छा परिचय था, इसलिये शास्त्रीय पद्धति पर हिन्दी में साहित्यचर्चा करने की इनमें पूर्ण योग्यता थी। हिन्दी में सबसे पहले शास्त्रीय पद्धति पर लक्षण-ग्रन्थ लिखने का श्रेय इन्हीं को है। ये काव्य में अलंकारों को प्रधानता देने वाले कवि थे। इन्होंने स्वयं कहा भी है :—

"भूषण-बिन न बिराजई कविता-बनिता मित्त।"

इसीलिये इन्होंने संस्कृत के भामह, उद्भट और दंडी आदि अलंकार वादी आचार्यों का अनुसरण किया है, मम्मट, विश्वनाथ आदि रस-वादियों का नहीं। 'कविप्रिया' में इन्होंने अलंकारों का अच्छा विवेचन किया है। इन्होंने अलंकारों के सामान्य और विशिष्ट, ये दो भेद किये हैं। अन्य कवियों की भाँति इन्होंने अलंकारों का क्रम नहीं कहा और न सब अलंकार ही कहे हैं। कहीं कहीं एक ही अलंकार का विवेचन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। 'कविप्रिया' एक उत्कृष्ट रचना है। इसमें इन्होंने अपना आचार्यत्व ही विशेष रूप में प्रगट किया है, कवित्व नहीं। अलंकारों के अतिरिक्त इसमें इन्होंने गुण-दोष, षट्ऋतु और नखशिख आदि का वर्णन भी किया है। रसिकप्रिया में केशव ने रसों का निरूपण किया है। नव रसों में शृंगार को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। नायक-नायिका-भेद पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है।

'रामचन्द्रिका' केशव का प्रबन्ध-काव्य है, किन्तु इसमें उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। वस्तुतः प्रबन्ध-काव्य लिखने की योग्यता इनमें नहीं थी। 'रामचन्द्रिका' में कथा का प्रवाह स्थान स्थान पर रुद्ध-सा प्रतीत होता है। मुक्तक-काव्य की छाया इस रचना में स्थान स्थान पर दिखाई देती है। मौलिकता की भी इसमें कमी है। 'प्रसन्नराघव', 'हनुमन्नाटक', 'अनर्घराघव', 'कादम्बरी' आदि संस्कृत के ग्रन्थों की छाया यत्र-तत्र दिखाई देती है। अलंकारों का प्रयोग बहुत अधिक और जान-बूझकर किया गया है। हाँ, संवाद इसमें बहुत अच्छे हैं। छन्दों की विविधता के कारण संवादों की रोचकता और भी बढ़ गई है। इसमें कुण्डलिया, सोरठा, कवित्त, दोहा,

चौबोला, तोमर, हरिगीतिका, छप्पय, बसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीड़ित आदि विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है।

केशव की भाषा ब्रज-भाषा है, परन्तु कहीं कहीं उसमें बुन्देलखंडी शब्द भी मिल गये हैं। संस्कृत के शब्दों का प्रयोग भी उसमें अधिक मिलता है। संस्कृत के शब्दों की अधिकता से केशव के काव्य की माधुरी कुछ न्यून हो गई है। संस्कृत में मीलित वर्ण बुरे नहीं माने जाते, पर ब्रज-भाषा में इन्हें श्रुति-कटु समझा जाता है। उनकी भाषा कहीं कहीं क्लिष्ट होगई है। संस्कृत के पंडित होने के कारण उनका व्याकरण-ज्ञान प्रशंसनीय था, इसलिये उनकी भाषा भी अधिकतर व्याकरण-संगत है। शब्दों की तोड़-मरोड़ भी उन्होंने कम की है। उनकी भाषा में उनके पांडित्य की झलक है, इसीलिए वह कृत्रिम-सी जान पड़ती है।

केशवदास ने अपने ग्रन्थों में अपने अगाध पांडित्य का परिचय दिया है। वे कवि भी थे और आचार्य भी, किन्तु उनमें आचार्यत्व ही प्रधान था। उनमें सहृदयता और भावुकता की अपेक्षा पांडित्य अधिक था। आचार्यत्व में केशव की समानता कदाचित् ही रीति-कालीन कोई अन्य कवि कर सके। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का सुन्दर चमत्कार उनके काव्य में पर्याप्त है। संदेहालंकार का प्रयोग भी उन्होंने स्थान स्थान पर किया है। उनकी कविता में सब रसों का न्यूनाधिक रूप में वर्णन मिलता है, पर प्रधानता शृङ्गार-रस की ही है। 'रामचन्द्रिका' में प्रायः सभी रस पाये जाते हैं। यद्यपि केशव ने मुख्यतया अलंकारों की ओर ही ध्यान दिया है, फिर भी उनके काव्य में कितने ही ऐसे छन्द हैं जिनमें रस-परिपाक बहुत अच्छा हुआ है। इसमें सन्देह नहीं

कि उनका काव्य अलंकार-प्रधान है, रस-प्रधान नहीं। केशव के काव्य में तुलसी और सूर की जैसी सरसता और तन्मयता भले ही न हो, हिन्दी काव्य शास्त्र के आचार्यों में उनका आसन सर्वोच्च है।

—०●०—

पंचवटी-वन-वर्णन

फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल-कुल कलरव बोलैं।
अति मत्त मयूरी, पिय रस पूरी, बन बन प्रति नाचति डोलैं॥
सारी शुक पंडित, गुनगनमंडित, भावनमय अरथ बखानैं।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मनहु मदन रति मधु जानैं॥१॥
सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हू घटी जग जीव जतीन की छूटी तटी॥
अघ ओघ की बेरी कटी बिकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटी बन पंचवटी॥२॥

पंपासर-वर्णन

अति सुन्दर सीतल सोभ बसै। जहँ रूप अनेकनि लोभ लसै॥
बहु पंकज पक्षि बिराजत हैं। रघुनाथ बिलोकत लाजत हैं॥१॥
सगरी ऋतु सोभित शुभ्र जहीं। लह ग्रीषम पै न प्रवेस सही॥
नव नीरज नीर तहाँ सरसै। सिय के सुभ लोचन से दरसै॥२॥
सुन्दर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की दुति को है।
तापर भौंर भलो मन रोचन लोकबिलोचन की रुचि रोहै॥
देखि दई उपमा जलदेविन दीरघ देवन के मन मोहै।
केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सो है॥३॥

मिलि चक्रिन चंदन वात बहै अति मोहत न्यायन हीं मति को।
मृगमित्र विलोकत चित्त जरै लिये चन्द्र निशाचर-पद्धति को ॥
प्रतिकूल शुकादिक होहिं सबै जिय जानै नहीं इनकी गति को।
दुख देत तड़ाग तुम्हैं न बनै कमलाकर है कमलापति को ॥४॥

—:o:—

वृद्धावस्था-वर्णन

काँपै उर बानि डगै बर डीठि त्वचाऽति कुचै सकुचै मति बेली।
नवै नव ग्रीव थकै गति केशव बालक ते सँग ही सँग खेली।
लिये सब आधिन व्याधिन संग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।
भगै सब देह दशा, जिय साथ रहै दुरि दौरि दुराश अकेली ॥१॥
विलोकि सिरोरुह सेत समेत तनोरुह कोविद यों गुण गायो।
उठे किधौं आयु की औधि के अंकुर शूल कि शुष्क समूल नसायो ॥
जरैं किधौं केशव व्याधिन की किधौं आधि के आखर अंत न पायो।
जरा सर पंजर जीव जरयो कि जरा जरकंबर सों पहिरायों ॥२॥

—:o:—

अंगद-रावण-संवाद

अंगद कूदि गये जहाँ, आसनगत लंकेश।
मनु मधुकर करहाट पर, शोभित श्यामल वेश ॥१॥

प्रतिहार—

पढ़ौ विरंचि मौन वेद, जीव सोर छंडि रे।
कुवेर बेर कै कही न यक्ष भीर मंडि रे ? ॥

दिनेश जाय दूरि बैठे नारदादि संग ही।
न बोलु चंद मंद-बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं ॥ २ ॥

रावण—

कौन हो ? पठये सो कौन ? ह्यां तुम्हैं कह काम है ?

अंगद—

जाति बानर, लंकनायक दूत अंगद नाम है ॥

रावण—

कौन है वह बाँधि कै हम देह पूँछ सबै दही ?

अंगद—

लंक जारि सँहारि अक्ष गयो सो बात वृथा कहीं ? ॥ ३ ॥

महोदर—

कौन भाँति रहौ तहाँ तुम ?

अंगद—

राजप्रेषक जानिये।

महोदर—

लंक लाइ गयो जो बानर कौन नाम बखानिये ? ॥

अंगद—

मेघनाद जो बाँधियो वह मारियो बहुधा तबै।
लोक लाज दुरयो रहै अति जानिये न कहाँ अबै ॥ ४ ॥

रावण-अंगद—

कौन के सुत ? बालि के; वह कौन बालि ? न जानिये।
काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये ॥

है कहाँ वह ? वीर अंगद देवलोक बताइयो ।
क्यों गयो ? रघुनाथ-बान-विमान बैठि सिधाइयो ॥ ५ ॥
लंकनायक को ? विभीषण, देवदूषण को दहै ।
मोहि जीवत होइ क्यों ? जग तोहि जीवित को कहै ? ॥
मोहि को जग मारिहै ? दुरबुद्धि तेरिय जानिये ।
कौन बात पठाइयो कहि वीर वेगि बखानिये ॥ ६ ॥

अंगद—

श्रीरघुनाथ को वानर केशव आयो हो एक न काहू हयो जू ।
सागर को मद झारि चिकारि त्रिकूट की देह विदारि गयो जू ॥
सीय निहारि सँहारि कै राक्षस शोक अशोकवनीहि दयो जू ।
अक्षकुमारहि मारि कै लंकहि जारि कै नीकेहि जात भयो जू ॥७ ।
राम राजान के राज आये इहाँ धाम तेरे महाभाग जागे अबै ।
देवि मन्दोदरी कुम्भकर्णादि दै मित्र मंत्री जिते, पूँछि देखो सबै ।
राखिये जाति को पाँति को वंश को गोत को, साधिये लोकपर्लोक को
आनि कै पाँ परो, देस लै कोप लै, आसु ही ईश सीता चलै ओक को८

रावण—

लोक लोकेश स्यों जो जु ब्रह्मा रचे आपनी सींव सो सो रहैं ।
चारि बाहैं धरे विष्णु करैं बात साँची यहै बेद बानी कहैं ॥
ताहि भ्रूभंग ही देव देवेश स्यों विष्णु ब्रह्मादि दै रुद्र जू संहरै ।
ताहि हौं छोड़ि कै पाँय का के परौं ? आजु संसार तो पाँय मेरे परै ।९॥

रावण-अंगद—

राम को काम कहा ? रिपु जीतहिं, कौन सबै रिपु जीत्यो कहाँ ? ।
बालि बली, छल सों; भृगुनन्दन गर्व हरयो, द्विज दीन महा ॥

दीन सु क्यों, छिति छत्र हत्यो, बिन प्राणन हैहयराज कियो
हैहय कौन? वहै बिसरयो जिन खेलत ही तोहि बाँधि लियो? ॥ १० ॥

अंगद—

सिन्धु तर्‌यो उनको बनरा, तुम पै धनुरेख गई न तरी।
बाँदर बाँधत सो न बँध्यो, उन बारिधि बाँधि कै बाट करी॥
श्रीरघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हैं दसकंठ न जानि परी।
तेलहु तूलहु पूँछ जरी न जरी, जरी लंक जराइ जरी? ॥ ११ ॥

मेघनाद—

छाँड़ि दियो हम ही बनरा वह, पूँछ की आगि न लंक जरी!
भीर में अच्छ मरयो चपि बालक, वादिहि जाय प्रशस्ति करी!
ताल बिंधे अरु सिन्धु बँध्यो यह चेटक-विक्रम कौन दियो?
बानर को, नर को बपुरा? पल में सुरनायक बाँधि लियो ॥१२॥

अंगद-रावण—

चेटक सौं धनु भंग कियो तन रावन के अति ही बलु हो।
बाण समेत रहे पचिकै तहँ जा सँग, पै न तज्यौ थलु हो॥
बाण सु कौन? बली बलि को सुत, वै बलि बावन बाँधि लियो?
वेई सुतौ जिनकी चिर चेरिन नाच नचाइकै छाँड़ि दियो ॥१३॥

रावण—

नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपिपुञ्ज तिहारे।
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपनों पदु लै, पितु जा लगि मारे॥
तोसे सपूतहि जाय कै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहिं क्यों न हतै बपु मारे? ॥१४॥

जो सुत अपने बाप को, बैर न लेइ प्रकास।
तासौं जीवत ही गरयो,लोग कहैं तजि त्रास ॥ १५ ॥

अंगद—

इनको बिलगु न मानिये कहि केशव पल आधु।
पानी पावक पवन प्रभु ज्यौं असाधु त्यौं साधु॥ १६ ॥

रावण—

उरहि अंगद लाज कछू गहौ, जनक-घातक बात वृथा कहौ।
सहित लक्ष्मण रामहिंसंहरौं, सकल वानर राज तुम्हैं करौं १७

अंगद—

शत्रु, सम, मित्र हम चित्त पहिचानहीं।
दूतविधि-नूत कबहूँ न उर आनहीं॥
आप मुख देखि अभिलाष अभिलाषहू।
राखि भुज सीस तब और कहँ राखहू ॥ १८ ॥

रावण—

मेरी बड़ी भूल कहा कहौं रे।
तेरो कह्यो दूत सबै सहौं रे॥
वै जो सबै चाहत तोहि मारयो।
मारौं कहा तोहिं जो दैव मारयो ॥ १९ ॥

अंगद—

नराच श्रीराम जहीं धरैंगे, अशेष माथे कटि भू परैंगे।
शिखा शिवा श्वान गहे तिहारी, फिरैं चहूँ ओर निरै बिहारी॥२०॥

रावण—

महा मीचु दासी सदा पाँइ धोवै, प्रतीहार है कै कृपा सूर जोवै।
क्षुधानाथ लीन्हें रहैं छत्र जाको, करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको ? ॥२१॥
सका मेघमाला, शिखी पाककारी, करै कोतवाली महादंडधारी।
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके, कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताके ? ॥२२॥

अंगद—

पेट चढ़्यौ पलना पलका चढ़ि पालिकिहू चढ़ि मोह मढ़्यौ रे।
चौक चढ़्यौ चित्रसारि चढ़्यौ गजबाजि चढ़्यौ गढ़ गर्व चढ़्यौ रे ॥
व्योम बिमान चढ़्योई रह्यौ कहि केशव सो कबहूँ न पढ़्यौ रे।
चेतत नाहिं रह्यौ चढ़ि चित्त सो चाहत मूढ़ चिताहू चढ़्यौ रे ॥२३॥

रावण—

डरै गाय बिप्रै अनाथै जो भाजै, परद्रव्य छोड़े परस्रीहि लाजै ॥
परद्रोह जासों न होवै रती को, सो कैसे लरै वेष कीन्हें जती को ? २४
गँद करयो मैं खेल को हरगिरि केसोदास।
सीस चढ़ाये आपने, कमल समान सहास ॥ २५ ॥

अंगद—

जैसो तुम कहत उठायो एक हरगिरि,
ऐसो कोटि कपिन के बालक उठावहीं।
काटे जो कहत सीस, काटत घनेरे घाघ,
मगर के खेल, क्यों सुभट पद पावहीं ॥
जीत्यो जो सुरेश रण, साप ऋषिनारि ही को,
सम[illegible] [illegible]स [illegible]ज नाते समझावहीं।

गहौ राम पायँ, सुख पाय करै तपी तप,

सीता जू को देहि, देव दुन्दुभी बजावहीं ॥ २६ ॥

रावण—०

तपी जपी विप्रन छिपही हरौं, अदेवद्वेषी सब देव संहरौं।

सिया न देहौं यह नेम जी धरौं, अमानुषी भूमि अवानरी करौं ॥२७॥

अंगद—

पाहन ते पतिनो करि पावन, टूक कियो धनुहू हर को रे।

छत्रविहिन करि छन में छिति गर्व हर्‌यौ तिनके बर को रे ?

पर्वतपुञ्ज पुरैन के पात समान तरे, अजहूँ धरको रे।

होयँ नरायन हू पै न ये गुन, कौन यहाँ नर ? वानर को रे ?॥२८॥

रावण—

देहिं अंगद राज तोकहं मारि वानरराज को।

बाँधि देहिं विभीषणै अरु फोरि सेतु समाज को ॥

पूँछ जारहिं अच्छरिपु की, पायँ लागहिं रुद्र के।

सीय को तब देहुँ रामहिं, पार जायँ समुद्र के ॥२६ ॥

अंगद—

लंक लाय दियो बली हनुमंत संतन गाइयो।

सिंधु बाँधत सोधि कै नल छीर छीट बहाइयो ॥

ताहि तोहि समेत अंध उखारिहौं उलटी करौं।

आजु राज कहाँ विभीषण बैठिहैं तेहि ते डरौं ॥३०॥

अंगद रावण को मुकुट लै करि उड़ो सुजान।

मनो चल्यो यमलोक को दशासिर को प्रस्थान ॥३१॥

बिहारीलाल

हिन्दी-साहित्य के शृङ्गारी कवियों में बिहारी सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। ये माथुर चौबे थे। इनका जन्म ग्वालियर के समीप बसुआ गोविंदपुर गाँव में संवत् १६६० के लगभग हुआ था। इनके पिता का नाम केशवराय था। इनकी माता का देहान्त हो जाने पर ये ग्वालियर छोड़ ओड़छे चले गये। बिहारी ने भी अपनी बाल्यावस्था अपने पिता के साथ बुन्देलखंड में ही बिताई। युवावस्था में ये अपने ससुराल मथुरा में आकर रहने लगे। जयपुर के महाराज जयसिंह के दरबार में इनका बड़ा आदर था। कहा जाता है कि एक समय महाराज जयसिंह अपनी एक नवोढ़ा रानी के प्रेम में इतने बेसुध रहने लगे कि वे रात-दिन उसी के महल में पड़े रहते थे। राज-काज की ओर महाराज की उदासीनता देख मंत्रीलोग बहुत चिन्तित थे। इन्हीं दिनों बिहारी भी वहाँ पहुँचे। इन्होंने मंत्रियों के कहने पर यह दोहा महाराज के पास भिजवाया:—

"नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल॥"

यह दोहा पढ़ कर महाराज सचेत हुए और वे महल से निकल कर राज-काज की देखभाल करने लगे। महाराज जयसिंह बिहारी पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बिहारी को अपने दरबार में स्थान दिया और उपर्युक्त दोहे के समान अन्य दोहे लिखने को कहा। बिहारी ने उन्हीं

की प्रेरणा से अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' की रचना की। कहा जाता है कि प्रत्येक दोहे पर बिहारी को महाराज जयसिंह से एक एक अशरफी मिली थी। अपनी सतसई की रचना इन्होंने संवत् १७१९ में समाप्त की। इसी समय के लगभग इनकी पत्नी का देहान्त हो गया और ये संसार से उदास रहने लगे। महाराज जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् ये वृन्दावन चले आये। इनकी मृत्यु १७२० के लगभग वृन्दावन में हुई।'

बिहारी ने एक 'सतसई' की ही रचना की है। इस सतसई का काव्यरसिकों में बड़ा आदर है। इसकी रचना करके बिहारी ने यह सिद्ध कर दिया है कि किसी लेखक की कीर्ति को अमर बनाने के लिये उसकी एक ही उत्कृष्ट रचना पर्याप्त है। 'बिहारी-सतसई' के दोहे इतने चमत्कारपूर्ण और सरस हैं कि कई टीकाकारों ने उनका भाव स्पष्ट करने के लिये अलग अलग टीकाएँ लिखी हैं। उन टीकाओं में सुरतिमिश्र की टीका और बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर की बिहारी-रत्नाकर नामक टीका प्रसिद्ध है। पंडित अम्बिकादत्त व्यास और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र आदि ने सतस के दोहों पर उनका भाव विशद करने के लिये कुण्डलियाएँ लगाने का प्रयत्न किया है। पंडित परमानन्द ने 'शृङ्गार-सप्तशतिका' नाम से इसका संस्कृत में अनुवाद किया है। 'बिहारी-सतसई' पर पंडित पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारीसतसई का भूमिकाभाग' नामक एक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखा है जिसमें संस्कृत, हिन्दी और उर्दू के अन्य कवियों के साथ बिहारी की तुलना की गई है। इस प्रकार बिहारी-सतसई सम्बन्धी एक विस्तृत साहित्य तैयार हो गया है।

तुलसीकृत रामायण को छोड़ कर और कोई भी ग्रन्थ हिन्दी में इतना प्रचार न पा सका।

बिहारी-सतसई एक मुक्तक-रचना है। मुक्तक-रचना में एक पद्य का लगाव पूर्वापर किसी दूसरे छंद से नहीं रहता, इसलिये उसमें कवि को एक एक पद्य में एक एक चित्र खींचना पड़ता है। प्रबन्धकाव्य की अपेक्षा मुक्तक-रचना परिश्रमसाध्य होती है। इसमें वही कवि सफलता प्राप्त कर सकता है जिसमें समाहार-शक्ति हो, अर्थात् जो थोड़े ही शब्दों में बहुत कहने की शक्ति रखता हो। यह शक्ति बिहारी में पूर्णतया वर्तमान थी। उन्होंने 'दोहा' जैसा छोटा छन्द अपना कर भी मुक्तक-रचना में सफलता प्राप्त की है। उनका प्रत्येक दोहा एक एक चित्र उपस्थित करता है। प्रत्येक दोहे में शब्दों को तौल कर रखा गया है, यदि एक भी शब्द बदल दिया जाय तो चमत्कार में न्यूनता आजाती है। वस्तुतः मुक्तक-रचना की सारी विशेषतायें उनकी 'सतसई' में वर्तमान हैं।

बिहारी की पर्यवेक्षण शक्ति बड़ी तीव्र थी। जिस दृश्य या चेष्टा पर उन्होंने दृष्टि डाली है उसका सजीव चित्र अपने दोहों में अंकित कर दिया है। निम्नलिखित पद्य में कृष्ण से बातें करने की इच्छा से उनकी मुरली को छिपानेवाली गोपी के हाव-भावों का कितना सुन्दर चित्र चित्रित हुआ है:—

"बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै, भौंहनि हँसै, देन कहै, नटि जाइ॥"

इस प्रकार के सुन्दर सजीव चित्र 'सतसई' में भरे पड़े हैं और इन्हीं के कारण बिहारी की कविता प्रभावशाली हो गई है। भाव-व्यंजना या

रस-व्यंजना में वे बड़े निपुण थे, वस्तु-व्यंजना के उदाहरण भी उनकी रचना में पर्याप्त हैं। वस्तु-व्यंजना में उनकी विरह की उक्तियां और शोभा, सुकुमारता आदि के वर्णन सम्मिलित हैं। यह बात अवश्य है कि उनकी वस्तु-व्यंजना प्राचीन रूढ़ियों के आश्रित है। उनका विरह-वर्णन ऊहात्मक है। कहीं कहीं तो वे औचित्य और स्वाभाविकता का उल्लङ्घन कर गये हैं, पर कहीं कहीं प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करने में उन्होंने अपनी व्यापक अनुभूति का परिचय दिया है। विरह-वर्णन में उन्होंने प्राचीन परम्परा का ही अनुसरण किया है, इसलिये उसमें उनका सच्चा रूप निखरने नहीं पाया।

बिहारी रीतिकाल के कवि थे और रीतिकाल में नायक-नायिका-भेद रस, अलंकार आदि पर लक्षणग्रन्थ लिखने की प्रथा चल पड़ी थी। बिहारी ने अपनी 'सतसई' को लक्षण-ग्रन्थ का रूप तो नहीं दिया किन्तु उस काल के प्रभाव से वे न बच सके। उनके पद्यों में अलंकारों की प्रचुरता है, किसी किसी पद्य में तो अलंकारों की झड़ी सी लगी हुई दिखाई देती है। यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, विभावना, असंगति आदि अलंकारों के अच्छे से अच्छे उदाहरण सतसई में वर्तमान हैं। किंतु अलंकारों का बाहुल्य होने पर भी उनमें स्वाभाविकता है, वे रसोद्रेक करने में बाधक नहीं हैं। उनकी सतसई में ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं जिनमें केवल शाब्दिक चमत्कार हो। नायक नायिका-भेद की दृष्टि से लिखे हुए पद्यों की संख्या भी उनकी कृति में पर्याप्त है।

बिहारी की भाषा भी अधिकतर ब्रज की बोलचाल की भाषा है, किन्तु उसमें अरबी-फ़ारसी के और बुन्देलखंडी शब्द भी आ गये हैं।

उनकी भाषा तत्कालीन अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक साफ-सुथरी और स्वाभाविक है। शब्दों को तोड़ मरोड़ कर अधिक विकृत बनाने का प्रयत्न इन्होंने नहीं किया है। उनकी वाक्य-रचना सुसंगठित है। उनकी भाषा में लालित्य और सरसता अधिक है।

बिहारी की प्रतिभा का क्षेत्र बहुत विस्तृत था। ज्योतिष, पुराण, दर्शनशास्त्र, इतिहास आदि से भी उनकी पर्याप्त जानकारी थी। शृङ्गार के अतिरिक्त उन्होंने भक्ति, नीति आदि पर भी कुछ दोहे लिखे हैं और उनमें भी उनकी कवित्वशक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। उनकी भक्ति के उद्‌गार कवित्व के रूप में ही हैं। वे कवि थे, भक्त नहीं। वस्तुतः शृङ्गाररस के कवियों में बिहारी के जोड़ का अन्य कोई कवि नहीं हुआ। उनकी सतसई के सम्बन्ध में यह उक्ति प्रसिद्ध है:—

"सतसैया के दोहरे ज्यो नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं वेधैं सकल सरीर॥"

दोहे

नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यो मनौ तारन-बिरदु बारक बारनु तारि ॥ १ ॥
झीनैं पट मैं झुलमुली झलकति ओप अपार।
सुरतरु की मनु सिंधु मैं लसति सपल्लव डार ॥ २ ॥
अजौं तरयौना हीं रह्यो श्रुति सेवत इक रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यो बसि मुकुतनु कैं संग ॥ ३ ॥
जम-करि-मुँह-तरिहरि परयो, इहिं धरहरि चित लाउ।
विषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ ॥ ४ ॥
पलनु पीक, अंजनु अधर, धरे महावरु भाल।
आजु मिले, सु भली करी, भले बने हौ लाल ॥ ५ ॥
तो पर वारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान।
तू मोहन कैं उर बसी ह्वै उरबसी-समान ॥ ६ ॥
लौने मुहुँ दीठि न लगै, यौं कहि दीनौ ईठि।
दूनी ह्वै लागन लगी, दियैं दिठौना, दीठि ॥ ७ ॥
कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिबी, मुरारि।
बीधे मोसौं आइ कै गीधे गीधहिं तारि ॥ ८ ॥
पाइ महावरु दैंन कौं नाइनि बैठी आइ।
फिरि फिरि, जानि महावरी, एड़ी मीड़ति जाइ ॥ ९ ॥

नेहु न, नैननु कौं कछु उपजी बड़ी बलाइ।
नीर-भरे नित-प्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाइ॥ १० ॥

जगतु जनायो जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहि।
ज्यौं आँखिनु सबु देखियै आँखि न देखी जाँहि॥ ११ ॥

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईं हिं न भूलि।
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि॥ १२ ॥

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन-तन माँह।
देखि दुपहरी जेठ की छाँहौं चाहति छाँह॥ १३ ॥

सीतलताऽरु सुबास कौ घटै न महिमा-मूरु।
पीनसवारैं जो तज्यौ सोरा जानि कपूरु॥ १४ ॥

बंधु भए का दीन के, को तारयौ रघुराई।
तूठे तूठे फिरत हौ झूठे बिरद कहाइ॥ १५ ॥

थोरे ही गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुम हूँ, कान्ह, मनौ भए आज कालिह के दानि॥ १६ ॥

अंग अंग नग जगमगत दीपसिखा सी देह।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै बड़ौ, उज्यारौ गेह॥ १७ ॥

कब कौ टेरतु दीन रटै होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जगनाइक, जग-बाइ॥ १८ ॥

जौ न जुगति पिय मिलन की धूरि मुकति-मुँह दीन।
जौ लहियै सँग सजन, तौ धरक नरक हुँ की न॥ १९ ॥

दियौ, सु सीस चढ़ाइ लै आछी भाँति अएरि।
जोप सुखु चाहतु लियौ, ताके दुखहिं न फेरि॥ २० ॥

कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा विपति-विदारनहार ॥ २१ ॥
तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग ॥ २२ ॥
केसरि कै सरि क्यौं सकै, चंपक कितकु अनूपु।
गात-रूपु लखि जातु दुरि जातरूप कौ रूपु ॥ २३ ॥
लसतु सेत-सारी-ढप्यौ, तरल तरयौना कान।
परयो मनौ सुरसरि-सलिल रवि-प्रतिबिंबु बिहान ॥ २४ ॥
या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ॥ २५ ॥
कैसैं छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम।
मढ़्यो दमामौ जातु क्यौं, कहि चूहे कैं चाम ॥ २६ ॥
सकत न तुव ताते बचन मो रस कौ रसु खोइ।
खिन खिन औटे खीर लौं खरो सवादिलु होइ ॥ २७ ॥
जपमाला, छापैं, तिलक सरै न एकौ कामु।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु ॥ २८ ॥
पूस-मास सुनि सखिनु पैं साईं चलत सवारु।
गहि कर बीन प्रवीन तिय राग्यौ रागु मलारु ॥ २९ ॥
घरु घरु डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचतु जाइ।
दियैं लोभ-चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाइ ॥ ३० ॥
मोहन-मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ।
बसतु सु चित-अंतर तऊ प्रतिबिंबितु जग होइ ॥ ३१ ॥

आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु।
घरहँ जँवाई लौं घट्यौ खरौ पूस-दिन-मानु॥ ३२॥

बेसरि-मोती-दुति-झलक परी ओठ पर आइ।
चूनो होइ न चतुर तिय, क्यों पट-पोंछ्यौ जाइ॥ ३३॥

जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ स्यामु सुभग-सिरमौर।
बिनहूँ उन छिनु गहि रहतु दृगनु अजौं वह ठौरु॥ ३४॥

मरकत-भाजन सलिल-गत इंदुकला कैं बेख।
झीन झगा मैं झलमले स्यामगात-नखरेख॥ ३५॥

तजि तीरथ,हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग पग होतु प्रयागु॥ ३६॥

सोवत, जागत, सुपन-बस, रस, रिस चैन, कुचैन।
सुरति स्यामघन की, सु रति बिसरैं हूँ बिसरै न॥ ३७॥

संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगंध॥ ३८॥

जोन्ह नहीं यह, तमु यहै, किए जु जगत निकेतु।
होत उदै ससि के भयौ मानहु ससहरि सेतु॥ ३९॥

जात जात बितु होतु है ज्यौं जिय मैं संतोषु।
होत होत जौ होइ, तौ होइ घरी मैं मोषु॥ ४०॥

हरि, कीजति बिनती यहै तुम सौं बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति डर्यौ रह्यौ पर्यौ रहौं दरबार॥ ४१॥

गिरि तैं ऊँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजारु।
पसु नरन कौ प्रेम पयोधि पगारु॥ ४२॥

मैं बरजी कै बार तूँ, इत कित लेति करौट।
पँखुरी लगैं गुलाब की परिहै गात खरौट ॥ ४३ ॥

सूर उदित हूँ मुदित-मन, मुखु सुखमा की ओर।
चितै रहत चहुँओर तैं, निहचल चखनु चकोर ॥ ४४ ॥

सोहतु संग समान सौं, यहै कहै सबु लोगु।
पान-पीक ओठनु बनै, काजर नैननु जोगु ॥ ४५ ॥

ललित स्याम लीला, ललन, बढ़ी चिबुक छबि दून।
मधु-छाक्यो मधुकरु पर्‌यो मनौ गुलाब-प्रसून ॥ ४६ ॥

बहकि बड़ाई आपनी कत राँचत मति-भूल।
बिनु मधु मधुकर कैं हियैं गड़ै न, गुड़हर फूल ॥ ४७ ॥

स्याम-सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा-तीरु।
अँसुवनु करति तरौंस कौ खिनकु खरौंहौं नीरु ॥ ४८ ॥

स्वारथु, सुकृतु न श्रमु वृथा; देखि बिहंग बिचारि।
बाज, पराएँ पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि ॥ ४९ ॥

सीस-मुकट, कटि-कछनी, कर मुरली, उर-माल।
इहिं बानक मो मन सदा बसौ, बिहारीलाल ॥ ५० ॥

सखि सोहति गोपाल कैं उर गुंजनु की माल।
बाहिर लसति मनौ पिए दावानल की ज्वाल ॥ ५१ ॥

नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ॥ ५२ ॥

भूषन भारु सँभारिहै क्यौं इहिं तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परैं सोभा ही कैं भार ॥ ५३ ॥

कहत सबै बेंदी दियैं आँकु दसगुनौ होतु।
तिय-लिलार बेंदी दियैं अगिनितु बढ़तु उदोतु ॥ ५४ ॥

बढ़त बढ़त संपति-सलिलु मनसरोजु बढ़ि जाइ।
घटत घटत सु न फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥ ५५ ॥

पहिरि न भूषन कनक के, कहि आवत इहिं हेत।
दरपन के से मोरचे, देह दिखाई देत ॥ ५६ ॥

गुनी गुनी सबकैं कहैं निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक तैं अरक-समान उदोतु ॥ ५७ ॥

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़ै दुख-दंदु।
अधिक अँधेरौ जग करत मिलि मावस रबि-चंदु ॥ ५८ ॥

ललन-चलनु सुनि पलनु मैं अँसुवा झलके आइ।
भई लखाइ न सखिनु सौं झूठैं हीं जमुहाइ ॥ ५९ ॥

कंचन तन धन-बरन बर रह्यौ रंगु मिलि रंग।
जानी जाति सुबास हीं केसरि लाई अंग ॥ ६० ॥

तौ लगु या मन-सदन मैं हरि आवैं किहिं बाट।
विकट जटे जौ लगु निपट खुटैं न कपट-कपाट ॥ ६१ ॥

भजन कह्यौ, तातैं भज्यौ; भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तैं भज्यौ, गँवार ॥ ६२ ॥

पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाउ।
तरि संसार-पयोधि कौं हरि-नावैं करि नाउ ॥ ६३ ॥

यह बरिया नहिं और की, तूँ करिया वह सोधि।
पाहन नाव चढ़ाइ जिहिं कीने पार पयोधि ॥ ६४ ॥

मोरमुकट की चंद्रिकनु यौं राजत नँदनंद।
मनु ससिसेखर की अकस किय सेखर सतचंद ॥ ६५ ॥
दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन-विस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट रहि चंग-रंग भूपाल ॥ ६६ ॥
कहै यहै श्रुति सुम्रत्यौ, यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक ही पातक, राजा, रोग ॥ ६७ ॥
को कहि सकै बड़ेनु सौं लखैं बड़ीयो भूल।
दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल ॥ ६८ ॥
या भव-पारावार कौं उलँघि पार को जाइ।
तिय-छवि-छाया-ग्राहिनी ग्रहै बीच हीं आइ ॥ ६९ ॥
दिन दस आदरु पाइ कै करि लै आपु वखानु।
जौ लगि काग ! सराधपखु, तौ लगि तौ सनमानु ॥७०॥
मरतु प्यास पिंजरा-परयौ सुआ समै कैं फेर।
आदरु दैदै बोलियतु बाइसु बलि की बेर ॥ ७१ ॥
इहीं आस अटक्यो रहतु अलि गुलाब कैं मूल।
है हैं फेरि बसंत ऋतु इन डारन वे फूल ॥ ७२ ॥
नहिं पावसु, ऋतुराजु यह; तजि, तरवर, चित-भूल।
अपतु भएँ बिनु पाइहै क्यौं नव दल, फल, फूल ॥ ७३ ॥
नाहिंन ए पावक-प्रबल लुवैं चलैं चहुँ पास।
मानहु बिरह बसंत कैं ग्रीषम लेत उसास ॥ ७४ ॥
चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट-पट झीन।
मानहु सुरसरिता-बिमल-जल उछरत जुग मीन ॥ ७५ ॥

पटु पाँखै, भखु काँकरै, सपर परेई संग।
सुखी परेवा पुहुमि मैं एकै तुँहीं विहंग ॥ ७६ ॥

अरे, परेखौ को करै, तुँहीं विलोकि बिचारि।
किहिं नर, किहिं सर राखियै खरैं बढ़ैं परिपारि ॥ ७७ ॥

इन दुखिया अँखियानु कौं सुखु सिरज्यौई नाँहि।
देखैं बनै न देखतै, अनदेखैं अकुलाँहि ॥ ७८ ॥

चटक न छाँड़तु घटत हूँ सज्जन-नेहु गँभीरु।
फीकौ परै न, बरु फटै, रँग्यो चोल-रँग चीरु ॥ ७९ ॥

को छूट्यो इहिं जाल परि; कत, कुरंग अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं त्यौं उरझत जात ॥ ८० ॥

चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यौं न सनेह गँभीर।
को घटि; ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥ ८१ ॥

सोहत ओढ़ैं पीत पटु स्याम सलौनैं गात।
मनौ नीलमनि-सैल पर आतपु पर्‌यो प्रभात ॥ ८२ ॥

भाल लाल बेंदी, ललन, आखत रहे विराजि।
इंदुकला कुज मैं बसी मनौ राहु-भय भाजि ॥ ८३ ॥

(विहारीसतसई)

भूषण

वीररस के सर्वश्रेष्ठ कवि भूषण कान्यकुब्ज ब्राह्मण, कश्यपगोत्री त्रिपाठी थे। इनके पिता का नाम रत्नाकर था। चिन्तामणि, मतिराम और जटाशंकर इनके भाई थे। चिन्तामणि और मतिराम हिन्दी-साहित्य में उच्चकोटि के कवि माने गए हैं, जटाशंकर के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं। भूषणका जन्म कानपुर जिले के तिकवाँपुर नामक गाँव में संवत् १६७० में हुआ। इनके वास्तविक नाम का कुछ पता नहीं लगता। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें 'कवि-भूषण की उपाधि दी थी। तभी से ये साहित्य में भूषण नाम से प्रसिद्ध हुए। ये अनेक राजाओं के आश्रय में रहे किन्तु अन्त में इन्हें शिवा जी ही अनुकूल आश्रयदाता मिले। शिवा जी इनका बड़ा आदर करते थे और इन्होंने भी उन्हीं को अपने वीरकाव्य का नायक बनाया। पन्ना के महाराज छत्रसाल के दरबार में भी इनका अच्छा आदर था। कहा जाता है कि एक बार महाराज छत्रसाल ने स्वयं इनकी पालकी में अपना कन्धा लगाया था। इनकी मृत्यु संवत् १७७२ में मानी जाती है।

भूषण के 'शिवराज-भूषण', 'शिवा-बावनी' और छत्रसाल-दशक' ये तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त 'भूषण-उल्लास', 'दूषण-उल्लास' और 'भूषण-हजारा' ये तीन रचनाएँ भी इनकी कही जाती हैं किन्तु अब तक उनका ठीक पता नहीं लगा है। 'शिवराज-भूषण' एक लक्षण-

ग्रन्थ है। इसमें अलंकारों का निरूपण हुआ है किन्तु उदाहरणस्वरूप पद्यों में शिवा जी का ही यशोगान किया गया है। 'शिवा-बावनी' में शिवा जी के शौर्य, पराक्रम आदि का वर्णन बावन पद्यों में हुआ है और 'छत्रसाल-दशक' में महाराज छत्रसाल की प्रशंसा से सम्बन्धित दस पद्य हैं। इन तीनों ग्रन्थों में 'शिवराज-भूषण' ही विशेष महत्व रखता है, यही ग्रन्थ इनकी कीर्ति का मुख्य आधार-स्तम्भ है।

भूषण की कविता रीतिकाल के अन्य कवियों की अपेक्षा कुछ विशेषता लिए हुए है। रीतिकाल में शृंगाररस की प्रधानता रही किन्तु भूषण की रचनाओं में कविता-कामिनी वीरांगना का रूप धारण कर हमारे सम्मुख उपस्थित हुई। उस समय मुसलमानों की विलासिता का प्रभाव हिन्दुओं पर पड़ रहा था। हिन्दू राजपूतों की वीरता मन्द पड़ चुकी थी। शृंगारी कवि हिन्दू जाति को अधःपतन की ओर ले जा रहे थे। भूषण इस अधः पतन को अपनी आँखों से कब देख सकते थे! उन्होंने शिवाजी और छत्रसाल इन दो इतिहास-प्रसिद्ध नायकों को अपने वीर काव्य का विषय बनाया और मोहनिद्रा में सोई हुई हिन्दू-जाति के हृदय में उत्साह का संचार किया। उन्होंने शिवाजी के यश, वीरता, न्याय-तत्परता और धर्मनिष्ठा आदि का वर्णन बड़े ओजस्वी शब्दों में किया है। कुछ लोग भूषण की कविता को अत्युक्तिपूर्ण बताते हैं, पर वास्तव में हिन्दू-जाति के लिए उसमें तनिक भी असत्यता नहीं। शिवाजी और छत्रसाल को भूषण ने उसी रूप में देखा है जिस रूप में हिंन्दू-जनता उन्हें अब तक देखती चली आ रही है।

भूषण रीतिकाल के प्रभाव से प्रभावित अवश्य थे, इसीलिए उन्होंने

तत्कालीन परम्परा का अनुसरण करके 'शिवराज-भूषण' अलंकार-ग्रन्थ के रूप में लिखा; किन्तु रीति-ग्रन्थ लिखने की वास्तविक योग्यता उनमें न थी। 'शिवराज-भूषण' में अलंकारों के लक्षण कहीं कहीं भ्रामक और अधूरे हैं, उदाहरण भी कहीं कहीं दोषपूर्ण हैं। वस्तुतः रीति-ग्रन्थकार के रूप में सफल न हुए। उस समय की रीति-ग्रन्थ-लेखन-प्रणाली ने उनकी कविता का स्वाभाविक विकास भी न होने दिया।

भूषण के काव्य में वीररस प्रधान है। वीररस के युद्धवीर, दयावीर, दानवीर और धर्मवीर इन चारों प्रकारों का वर्णन उन्होंने अच्छा किया है। रौद्र और भयानक रस वीररस के सहायक माने जाते हैं। उन्होंने कहीं कहीं इन दो रसों के वर्णन में भी सफलता प्राप्त की है। उनकी रचनाओं में वीररस का परिपाक बहुत अच्छा हुआ है।

भूषण की भाषा साधारणतया ब्रजभाषा कही जाती है, किन्तु उसमें शुद्धता बहुत कम है। अरबी-फ़ारसी के शब्द उनकी भाषा में अधिक प्रयुक्त हुए हैं। कहीं कहीं उन्होंने शब्दों को तोड़ मरोड़ कर मनमाना रूप दिया है और इतना विकृत बना दिया है कि उनके वास्तविक रूप का पता बड़ी कठिनता से लगता है। व्याकरण के नियमों की ओर भी भूषण का ध्यान बहुत कम गया है। वस्तुतः भाषा को सजाने की ओर उनका ध्यान था ही नहीं। यह बात अवश्य है कि वीररस का उभारने में उनकी भाषा पूर्णतया समर्थ है।

तत्कालीन इतिहास की प्रसिद्ध प्रसिद्ध घटनाओं पर भूषण की कविता पर्याप्त प्रकाश डालती है। उनकी कविता में इतिहास और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य दिखाई देता है। उनकी वर्णन-शैली बहुत

सुन्दर और प्रभावशाली है। उनके युद्धवर्णन को पढ़ते समय युद्ध का जीता-जागता चित्र आँखों के सामने झूलने लगता है। उनके काव्य में अलंकारों के उत्कृष्ट उदाहरणों की भी कमी नहीं। उनकी कविता में जातीयता की भावना सर्वत्र विद्यमान है। हिन्दू-जाति की तत्कालीन मनोवृत्ति उसमें पूर्णतया प्रतिबिम्बित हुई है। भूषण हिन्दूजाति के सच्चे प्रतिनिधि कवि थे। वीररस के कवियों में उनका स्थान सब से ऊँचा है।

गणेश स्तुति

विकट अपार भव-पंथ के चले को स्रम-
हरन, (करन-बिजना से ब्रह्म ध्याइए)
यहि लोक परलोक सुफल करन, कोक-
नद से चरन हिए आनि कै जुड़ाइए।
(अलि-कुल-कलित-कपोल, ध्यान ललित,
अनंद-रूप-सरित मैं भूषन अन्हाइए)
पाप-तरु-भंजन, बिघन-गढ़-गंजन,
जगत-मन-रंजन द्विरद-मुख गाइए ॥१॥

भवानी-स्तुति

जै जयंति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनी।
जै मधुकैटभ-छलनि देवि जै महिष-बिमर्दिनि ॥
जै चमुंड जै चंड-मुंड-भंडासुर-खंडिनि।
जै सुरक्त जै रक्तबीज-बिड्डाल-बिहंडिनि ॥
जै जै निसुंभ-सुंभ-द्दलनि, भनि भूषन जै जै भननि।
सरजा समत्थ शिवराज कहँ, देहि बिजै जै जग-जननि ॥२॥

शिवाजी-विषयक

साहितनै सरजा तव द्वार प्रतिच्छन दान की दुन्दुभि बाजै।
'भूषन' भिच्छुक भीरन को अति भोजहु तें बढ़ि मौजनि साजै ॥

राजन को गन, राजन ! को गनै ? साहिन मैं न इती छबि छाजै ।
आजु गरीबनेवाज मही पर तो सो तुही सिवराज बिराजै ॥३॥

कुन्द कहा, पयवृन्द कहा, अरु चन्द कहा, सरजा जस आगे ?
'भूषन' भानु कृसानु कहाऽब खुमान प्रताप महीतल पागे ?
राम कहा, द्विजराम कहा, बलराम कहा, रन मैं अनुरागे ?
बाज कहा, मृगराज कहा, अतिसाहस मैं सिवराज के आगे ॥४॥

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल-राज है।
पौन बारिबाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यौं सहस्रबाहु पर राम द्विज-राज है ॥
दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृग झुण्ड पर,
'भूषन' वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ वंस पर सेर शिवराज है ॥५॥

सिंह थरि जाने बिन जावली जंगल भठी,
हठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।
'भूषन' भनत, देखि भभरि, भगाने सब,
हिम्मति हिये मैं धरि काहुवै न हटक्यो ॥
साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मदगल अफजलै पंजाबल पटक्यो।
[illegible] गिरि है करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यो ॥६॥

जेते हैं पहार भुव पारावार माहिं तिन,
सुनि कै अपार कृपा गहे सुख फैल हैं।
'भूषन' भनत साहितनै सरजा के पास,
आइबे को चढ़ी उर हौंसनि की ऐल हैं॥
किरवान बज्र सों विपच्छ करिबे के डर,
आनि कै कितेक आए सरन की गैल हैं।
मघवा मही मैं तेजवान सिवराज बीर,
कोट करि सकल सपच्छ किये सैल हैं॥७॥

तुम सिवराज ब्रजराज अवतार आजु,
तुमही जगत काज पोषत भरत हौ।
तुम्हैं छोड़ि यातें काहि विनती सुनाऊँ मैं,
तुम्हारे गुन गाऊँ, तुम ढ़ीले क्यों परत हौ॥
'भूषन' भनत वाहि कुल मैं नयो गुनाह,
नाहक समुझि यह चित्त मैं धरत हौ।
और बाँभन न देखि करत सुदामा सुधि,
मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ॥८॥

चमकती चपला न, फेरत फिरंगै भट,
इन्द्र को न चाप, रूप बैरष समाज को।
धाए धुरवा न, छाए धूरि के पटल, मेघ
गाजिबो न, बाजिबो है दुन्दुभी दराज को॥
भौंसिला के डरन डरानी रिपुरानी कहैं,
भ[illegible] पिय भजौ, देखि उदौ पायस के साज को॥९॥

घन की घटा न, गज-घटनि सनाह साज,
'भूषन' भनत आयो सेन सिवराज को ॥९॥

साहितनै सरजा के भय सों भगाने भूप,
मेरु मैं लुकाने के लहत जाय ओत हैं।
'भूषन' तहाऊँ मरहटपति के प्रताप,
पावत न कल अति कौतुक उदोत हैं॥
'सिव आयो सिव आयो' संकर के आगमन,
सुन कै परान ज्यों लगत अरिगोत हैं।
'सिव सरजा न, यह सिव है महेश' करि,
यों ही उपदेस जच्छ रच्छक से होत हैं ॥१०॥

दुरजन-दार भजि भजि बेसम्हार चढ़ीं,
उत्तर पहार डरि सिव जो नरिन्द तें।
'भूषन' भनत, बिन भूषन बसन, साधे
भूखन पियासन हैं नाहन को निन्दते ॥
बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने,
कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिन्द तें।
दृग-जल कज्जल-कलित बढ्यो कढ्यों मानो,
दूजो सोत तरनि-तनूजा को कलिन्द तें ॥११॥

वासव से बिसरत बिक्रम की कहा चली,
बिक्रम लखत बीर बखत-बुलन्द के।
जागे तेज-बृन्द सिवा जी नरिन्द मसनन्द,
माल-मकरन्द कुलचन्द साहिनन्द के॥

'भूषन' भनत देस देस वैरि नारिन मैं,
होत अचरज घर घर दुख-दंद के।
कनकलतानि इन्दु, इन्दु माहि अरविन्द,
झरैं अरबिन्दन तें बुन्द मकरन्द के ॥१२॥

गुननि सो इनहूँ को बाँधि लाइवतु पुनि,
गुनन सों इनहूँ को बाँधि लाइयतु है।
पाय गहे इनहूँ को रोज ध्याइयतु अरु,
पाय गहे उनहूँ को रोज ध्याइयतु है॥
'भूषन' भनत महाराज सिवराज तेरो,
रस, रोस एक भाँति ही को पाइयतु है।
दोहा ई कहे तें कविलोग ज्याइयतु अरु,
दोहाई कहेते अरि लोग ज्याइयतु है ॥१३॥

कामिनि कंत सों, जामिनि चंद सों, दामिनि पावस मेघ-घटा सों।
कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों, प्रीति बड़ी सनमान महा सों॥
'भूषन' भूषन सों तरुनी, नलिनी नव पूषनदेव-प्रभा सों।
जाहिर चारिहु ओर जहान, लसै हिन्दुवान खुमान सिवा सों ॥१४॥

चक्रवती चकता चतुरंगिनि, चारिउ चाप लई दिसि चंका।
भूप दरीन दुरे भनि 'भूषन', एक अनेकन वारिधि नंका॥
औरंगसाहि सों साहि को नन्द, लरो सिवसाह बजाय कै डंका।
सिंह की सिंह चपेट सहै, गजराज सहै गजराज को धंका ॥१५॥

देत तुरीगन गीत सुने बिनु देत करीगन गीत सुनाए।
भूषन' भावत भूप न आन जहान खुमान की कीरति गाए॥

मंगन को भुवपाल घने पै निहाल करै सिवराज रिझाए।
आन ऋतैं बरसे सरसैं, उमड़ैं नदियाँ ऋतु पावस पाए ॥१६॥

दारुन दुगुन दुरजोधन ते अवरंग,
'भूषन' भनत जग राख्यो छल मढ़िकै।
धरम धरम, बल भीम, पैज अरजुन,
नकुल अकिल, सहदेव तेज चढ़िकै ॥
साहि के सिवाजी गाज़ी, करयो आगरे मैं चंड,
पांडवनहू ते पुरुषारथ सु बढ़िकै।
सूने लाखभौन तें कढ़े वे पाँच राति मैं जु,
द्यौस लाख चौकी ते अकेलो आयो कढ़ि कै ॥१७॥

सीता संग सोभित सुलच्छन सहाय जाके,
भूपर भरत नाम भाई नीति चारु है।
'भूषन' भनत कुल-सूर कुल-भूषन हैं,
दासरथी सब जाके भुज भुव भारु है ॥
अरि-लंक तोर जोर जाके संग बानरहैं,
सिंधुरहैं बाँधे जाके दल को न पारु है।
तेगहि कै भेंटै जौन राकस मरद जानै,
सरजा सिवा जी राम ही को अवतार है ॥१८॥

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाँहहू के,
सब पातसाहन के गढ़-कोट हरते।
'भूषन' कहैं यों अवरंग सों वज़ीर, जीति
लीबे को पुरतगाल सागर उतरते ॥

सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हजरत हम मारिबे को नाहिं डरते
चाकर है उजुर कियो न जाय, नेक पै,
कछू दिन उबरते तो घने काज करते ॥१६॥

दच्छिन-नायक एक तुही भुव-भामिनि को अनुकूल ह्वै भावै।
दीनदयाल न तो सो दुनी पर म्लेच्छ के दीनहिं मारि मिटावै॥
श्री सिवराज भनै कवि 'भूषन' तेरे सरूप को कोउ न पावै।
सूर सुबंस मैं सूर-शिरोमनि ह्वै करि तू कुल-चन्द कहावै ॥२०॥

साहितनै सिव ! तेरो सुनत पुनीत नाम,
धाम धाम सब ही को पातक कटत हैं।
तेरो जस-काज आज सरजा निहारि कवि,
मन भोज विक्रम कथा तें उचटत है ॥
'भूषन' भनत तेरो दान संकलप जल,
अचरज सकल मही मैं लपटत हैं।
और नदी नदन ते कोकनद होत तेरो,
कर कोकनद नदी-नद प्रगटत हैं ॥२१॥

दै दस पाँच रुपैयन को जग कोऊ नरेस उदार कहायो।
कोटिन दान सिवा सरजा के सिपाहिन साहिन को विचलायो॥
'भूषन' कोऊ गरीबन सों भिरि भीमहुँ ते बलवन्त गिनायो।
दौलति इन्द्रसमान बढ़ी पै खुमान के नेक गुमान न आयो ॥२२॥

पंच हज़ारिन बीच खड़ा किया मैं उसका कछु भेद न पाया।
'भूषन' यों कहि औरंगजेब उजीरन सों बेहिसाब रिसाया॥

कम्मर की न कटारी दई इसलाम नै गोसलखाना बचया।
जोर सिवा करता अनरत्थ भली भई हत्थ हथ्यार न आया ॥२३॥
दरहिं दारि मुरादहि मारि कै संगर साह सुजै बिचलायो।
कै कर मैं सब दिल्ली की दौलति औरहु देस घने अपनायो॥
बैर कियो सरजा सिव सों यह नौरंग के न भयो मन भायो।
फौज पठाई हुती गढ़ लेन को गाँठिहुँ के गढ़ कोट गँवायो ॥२४॥
तो कर सों छिति छाजत दान है दानहू सों अति तो कर छाजै।
तैंही गुनी की बड़ाई सजै अरु तेरी बड़ाई गुनी सब साजै॥
'भूषन' तोहि सों राज बिराजत राज सों तू सिवराज बिराजै।
तो बल सों गढ़ कोट गजैं अरु तू गढ़ कोटन के बल गाजै॥२५॥
आदि बड़ी रचना है बिरंचि की जामैं रह्यो रचि जीव जड़ो है।
ता रचना महँ जीव बड़ो अति काहे तें ता उर ज्ञान गड़ो है॥
जीवन में नर लोग बड़ो कवि 'भूषन' भाषत पैज अड़ो है।
है नर लोग में राजा बड़ो सब राजन में सिवराज बड़ो है॥२६॥

अगर के धूप धूम उठत जहाँई तहाँ,
उठत बगूरे अब अति ही अमाप हैं।
जहाँई कलावंत अलापैं मधुर-स्वर,
तहाँई भूत प्रेत अब करत बिलाप हैं॥
'भूषन' सिवा जी सरजा के बैर बैरिन के,
डेरन मैं परे मनो काहू के सराप हैं।
बाजत हे जिन महलन में मृदंग तहाँ,
गाजत मतंग सिंह बाघ दीह दाप हैं॥२७॥

मानसर-वासी हंस वंस न समान होत,
चन्दन सों घस्यो घनसारऊ घरीक है।
नारद की सारद की हाँसी मैं कहाँ की आभ,
सरद की सुरसरी को न पुण्डरीक है ॥
'भूषन' भनत छक्यो छीरधि मैं थाह लेत,
फेन लपटानो ऐरावत को करी कहै ?
कयलास-ईस, ईस-सीस रजनीस वहाँ,
अवनीस सिवा के न जस को सरीक है ॥ २८ ॥

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकिहु व्यास के अंग सुहानी ॥
'भूषन' यों कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्य-चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी ॥२९॥

इन्द्र निज हेरत फिरत गज-इन्द्र अरु,
इन्द्र को अनुज हेरै दुगध-नदीस को।
'भूषन' भनत सुर सरिता को हंस हेरै,
विधि हेरै हंस औ चकोर रजनीस को ॥
सहितनै सिवराज करनी करी है तैं जु,
होत है अचम्भो देव कोटियो तैंतीस को।
पावत न हेरे तेरे जस मैं हिराने निज,
गिरि को गिरीश हेरैं गिरिजा गिरीस को ॥ ३० ॥

मुंड कटत कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन ॥

भूत फिरत करि बूत भिरत सुर-दूत थिरत तहँ।
चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहँ॥
इमि ठानि घोर घमसान अति 'भूषन' तेज कियो अटल।
सिवराज साहि सुव खगवल दलि अडोल बहलोल दल॥२१॥

ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज,
'भूषन' जे बाज की समाजैं निदरत है।
पौन पायहीन, दृग घूँघट मैं लीन, मीन,
जल मैं बिलीन, क्यों बराबरी करत हैं?॥
सब ते चलाक चित तेऊ कुलि आलम के,
रहैं उर अन्तर मैं धीर न धरत हैं।
जिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर तीर,
एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत हैं॥ २२॥

❀ ❀ ❀

साजि चतुरंज वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवा जी जंग जीतन चलत है।
'भूषण' भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के रलत है॥
ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठेलपेल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा मैं लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥ २३॥

प्रेतिनी पिसाचऽरु निसाचर निसाचरिहू,
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई है।
भैरों भूत प्रेत भूति भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है॥
किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम डिम डमरू दिगंबर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सों समाज आज कहाँ चली,
काहु पै सिवा नरेश भृकुटी चढ़ाई है॥२४॥

बद्दल न होंहि दल दच्छिन उमंडि आए,
घटा ये न होय इभ सिवा जी हँकारी के।
दामिनी-दमंक नाहिं खुले खग्ग बीरन के,
इन्द्रधनु नाहिं ये निसान हैं सवारी के।
देखि देखि मुगलों की हरमैं भवन त्यागैं,
उझकि उझकि उठैं बहुत बयारी के।
दिल्लीपति भूल मति गाजत न घोर घन,
बाजत नगारे ये सितारे-गढ़धारी के॥२५॥

राना भो चमेली और बेला सब राजा भये,
ठौर-ठौर रस लेत नित यह काज है।
सिगरे अमीर आनि कुन्द होत घर घर,
भ्रमत भ्रमर जैसे फूल की समाज है॥
'भूषन' भनत सिवराज वीर तैहीं देस-
देसन में राखी सब दच्छिन की लाज है।

त्यागे सदा षटपद-पद अनुमान यह,
  अलि नवरंगजेब चंपा सिवराज है ॥३६॥

छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,
  मुसकिल होत मुरचानहूँ की ओट मैं।
ताहि समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
  दावा बाँधि पर हल्ला बीरबल जोट मैं॥
'भूषन' भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
  किम्मति इहाँ लगि है जाकि भट झोट मैं।
ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
  अरिमुख घाव दै दै कूदि परैं कोट मैं॥३७॥

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
  दावा नाग-जूह पर सिंह सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
  पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को॥
'भूषन' अखंड नवखंड महिमंडल मैं,
  तम पर दावा रवि-किरन समाज को।
पूरब पछाँह देस दच्छिन तें उत्तर लौं,
  जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को॥३८॥

(भूषण-ग्रन्थावली)

—————

मतिराम

मतिराम रीतिकाल के प्रमुख कवियों में से एक हैं। ये वीररस के प्रसिद्ध कवि भूषण के भाई थे। ये ज़िला कानपुर के तिकवाँपुर नामक ग्राम में संवत् १६७४ के लगभग उत्पन्न हुए। ये बूँदी-नरेश छत्रसाल के पुत्र भावसिंह के यहाँ बहुत समय तक रहे। भावसिंह के लिये ही इन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ललितललाम' लिखा। इनका दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रसराज' है यह ग्रन्थ किसी राजा की प्रशंसा में नहीं लिखा गया। महाराज शंभुनाथ सोलंकी के यहाँ भी ये कुछ दिन तक रहे और उन्हीं के नाम से इन्होंने अपना छन्दोग्रन्थ 'छंदसार' बनाया। कुमाऊँ के राजा उद्योतसिंह से भी इन्होंने आदर प्राप्त किया था। अपनी सतसई में इन्होंने भोगनाथ नामक किसी राजा की स्तुति की है। भोगनाथ का नाम सतसई में कई बार आता है किन्तु यह भोगनाथ कौन था, यह अभी तक अज्ञात है। उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त इनके दो ग्रन्थ और कहे जाते हैं—'साहित्यसार' और 'लक्षण-शृंगार'। इनकी मृत्यु के विषय में कुछ पता नहीं लगता। संभवतः संवत् १७७३ के लगभग इनका देहान्त हुआ।

'ललितललाम' एक अलंकार-ग्रन्थ है। इसमें अलंकारों का अच्छा विवेचन हुआ है। कई पद्य भावसिंह की प्रशंसा में कहे गये हैं। अलंकारों के उदाहरण सरस और सरल है। कुछ पद्यों में भावसिंह के

हाथियों का बहुत अच्छा वर्णन है। 'रसराज' में केवल भावों का वर्णन है, रसों का नहीं। आरम्भ में नायिका भेद पर भी प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ में मतिराम की कविता के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण पाये जाते हैं। 'मतिराम सतसई' 'बिहारी सतसई' के ढंग पर बनाई गई है। इसमें बड़े सुन्दर सरस दोहे वर्तमान हैं।

रीतिकाल के अन्य कवियों की भाँति मतिराम की कविता में शब्दाडम्बर और कृत्रिमता नहीं। रीतिग्रन्थकार होते हुए भी उनकी रचनाओं में सरसता और स्वाभाविकता प्रचुर मात्रा में पाई जाति है। केवल शाब्दिक चमत्कार लाने का प्रयत्न उन्होंने कहीं नहीं किया। उनकी भाव-व्यंजना बड़ी सुन्दर है। उदाहरण के लिए यहाँ उनका एक दोहा उद्धृत किया जाता है:—

"बिन देखे दुख के चलहिं देखे सुख के जाहिं।
कहहु लाल इन दृगन के अँसुवा क्यों ठहराहिं॥"

आँसू सुख के भी होते हैं और दुख के भी। इस पद्य में उनका वर्णन कितना भावपूर्ण है!

मतिराम की कविता में उनके हार्दिक भाव देखने को मिलते हैं। उनमें तन्मयता और लालित्य है। उनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। तत्कालीन अन्य कवियों की भाँति उन्होंने अप्रचलित और विकृत शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। माधुर्य और प्रसाद ये दोनों गुण उनकी भाषा में वर्तमान हैं। श्रुति-कटु शब्दों का प्रयोग उन्होंने बहुत कम किया है।

नायिकाओं के सौन्दर्य और उनकी विविध दशाओं का चित्र खींचने में मतिराम बड़े प्रवीण थे। शृङ्गारी कवियों में बिहारी को सर्वोच्च

स्थान दिया गया है किन्तु उनकी कविता में भी मतिराम की जैसी सर-लता और तन्मयता नहीं पाई जाती। कला की उत्कृष्टता, ध्वनि और व्यंग्य का चमत्कार बिहारी की कविता में विशेष है, पर भाषा और भाव की स्वाभाविकता में मतिराम उनसे भी आगे बढ़ गये हैं। मतिराम का विरहवर्णन भी सुन्दर है। बिहारी की तरह उसमें अस्वाभाविकता नहीं है। केवल शृंगारी ही नहीं, वीररसपूर्ण कविता भी इनकी बहुत अच्छी है। इनके कवित्त और सवैयों में विशेष वाग्वैदग्ध्य न होने पर भी भाषा-सौन्दर्य और भाव-गाम्भीर्य पर्याप्त है। शृंगारी कवियों में बिहारी और देव के पश्चात् इन्हीं का नाम आता है।

बूँदी वर्णन

जगत विदित बूँदी नगर, सुखसंपति को धाम।
कलिजुग हू मैं सत्यजुग, तहाँ करत विश्राम ॥ १ ॥
पढ़त सुनत मन दै निगम, आगम समृति पुरान।
गीत-कबित्त कलानि को, जहँ सब लोग सुजान ॥ २ ॥
सरद-बारिधर से लसत, अमल धौरहर धौल।
चित्रनि चित्रित सिखर जहँ, इन्द्र धनुष-से नौल ॥ ३ ॥
महलनि ऊपर जहँ बने, कंचन कलस अनूप।
निज प्रभानि सौं करत हैं, गगन पीत अनुरूप ॥ ४ ॥
जहँ बिमान-वनितान के, श्रमजल हरत अनूप।
सौध-पताकनि के बसन, होई बिजन अनुरूप ॥ ५ ॥
बीना-बेनु-निनाद मृग, मोहि अचल करि चंद।
सौध-सिखर ऊपर जहाँ, दम्पति करत अनंद ॥ ६ ॥
जहाँ छहौं ऋतु मैं मधुर, सुनि मृदंग मृदु सोर।
संग ललित ललनानि के, नृत्य करत गृह-मोर ॥ ७ ॥
मरकत लाल प्रवाल मनि, मुकुत हीर अवदात।
ललित राजपथ मैं जहाँ, जरकस बसन बिकात ॥ ८ ॥
मद जल बरषत भूमि के, जलधर सम मातंग।
बिना परनि के खग जहाँ, सुंदर तरल तुरंग ॥ ६ ॥

सदा प्रफुल्लित फलित जहँ द्रुम बेलिन के बाग।
अलि कोकिल कलधुनि सुनत, लहत श्रवन अनुराग॥ १०॥
कमल कुमुद कुवलयन के, परिमल मधुर पराग।
सुरभि-सलिल पूरे जहाँ, बापी कूप तडाग॥ ११॥
सुक चकोर चातक चुहिल, कोक मत्त कलहंस।
जहँ तरवर सरवरन के, लसत ललित अवतंस॥ १२॥
अक्षयवट बालक-उदर, ज्यौं संसार समाय।
सकल जगत-पानिप रह्यौ, बूँदी मैं ठहराय॥ १३॥
तामैं प्रतिबिम्बित मनौं, संपतिजुत सुरलोक।
घर-घर नर-नारी लसैं, दिव्यरूप के ओक॥ १४॥
ता नगरी को प्रभु बड़ो, हाड़ा सुरजनराव।
रच्यो एक सब गुननि को बर बिरंचि समुदाय॥ १५॥

भावसिंह-महिमा-वर्णन

भोजन सौं 'मतिराम' कहैं कवि, लोगन कौं जिमि भोज बढ़ावै।
रोस किए रनमंडन मैं, खल देह की खालनि भूमि मढ़ावै॥
रीझ हू खीज मैं राव सता-सुत, कीरति मैं अति जोति चढ़ावै।
भाऊ दिवान गुरू सब भूपर, भूपन दान दान कृपान पढ़ावै॥ १॥

एक राजपूत है दिवान घावसिंह जाको,
जंग जुरैं चौगुनो चढ़त चित चाव मैं।
सत्रुसाल-नन्द को सुजस 'मतिराम' यानैं,
फैलत महीपति-समाज समुदाव मैं॥

दिल्ली के दिनेस के प्रचंड तेज आँच लागे,
पानिप रह्यो न काहू भूपति तलाव मैं।
ऐसे सब खलक तैं सकल सकिलि रही,
राव मैं सरम जैसें सलिल दरयाव मैं ॥२॥

सत्ता को सपूत भावसिंह भूमिपाल जाकी,
कित्ति जौन्ह करत जगत जित चाव हैं।
कविन को 'मतिराम' कामतरु ऐसो कर,
अंगद को ऐसो रन मैं अडोल पाँव हैं॥
चंद-कैसि जोति चंडकर-कैसो तेज पुर-
हूत कैसो पुहुमी मैं प्रगट प्रभाव हैं।
अरजुन पन, मुनि मन, धनपति धन,
जगपति तन, मृगपति रन राव हैं ॥३॥

तेज-निधाननि मैं रवि ज्यो छबिवंतन मैं विधु ज्यौं छबि छाजै।
सैलनि मैं ज्यौं सुमेर लसै वरवृच्छनि मैं कलपद्रुम साजै॥
देवनि मैं 'मतिराम' कहै मघवा जिमि सोहत सिद्ध समाजै।
राव सता-सुत भाऊँ दिवान जहान के राजनि मैं इमि राजै ॥४॥

बिक्रम मैं त्रिक्रम धरम-सुत धरम मैं,
धुंधमार धीर मैं धनेस वारौं धन मैं।
'मतिराम' कहत प्रियव्रत प्रताप मैं,
प्रबल बल पृथु पारथहि वारौं पन मैं॥
सत्रुसाल-नंद रैयाराव भावसिंह आजु,
महीं के महीप सब वारौं तेरे तन मैं।

नल वारौं नैननि मैं, बलि वारौं बैननि मैं,
भीम वारौं भुजनि मैं करन करन मैं ॥५॥

जंग मैं अंग कठोर महा मदनीर झरै झरना सरसे हैं।
भूलनि रंग घने 'मतिराम' महीरुह फूल प्रभा निकसे हैं॥
भाऊ दिवान उदार अपार सजीव पहार करी बकसे हैं॥६॥

(ललित-ललाम)

कृष्ण-विषयक

संचि बिरंचि निकाई मनोहर, लाजति मूरतिवंत बनाई।
तापर तो परभाग बड़े, 'मतिराम' लसै पतिप्रीति सुहाई॥
तेरे सुसील सुभाव भट्ट, कुलनारिन को कुलकानि सिखाई।
तै ही जनो पतिदेवत के गुन गौरि सबै गुनगौरी पढ़ाई॥१॥

क्यों इन आँखिन सों निरसंक ह्वै, मोहन को तन पानिप पीजै।
नेकु निहारैं कलंक लगै इहि गाँव बसे कहो कैसे के जीजै॥
होत रहे मन यों 'मतिराम' कहूँ बन जाय बड़ो तप कीजै।
ह्वै बनमाल हिए लगिए अरु, ह्वै मुरली अधरारस लीजै॥२॥

गोप-सुता कहै गौरि गुसाइनि! पायँ परौं बिनती सुनि लीजै।
दीन दयानिधि दासी के ऊपर, नेक सुचित्त दयारस भीजै॥
देहि जो ब्याहि उछाह सों मोहनै, मात-पिता हू को सो मन कीजै।
सुंदर साँवरो नंदकुमार, बसै उर जो वह सो बर दीजै॥३॥

गुच्छनि के अवतंस लसै सिर, पच्छन अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी करपल्लव सों, 'मतिराम' सुहायो॥

गुंजनि के उर मंजुल हार सुकुंजनि तैंकढ़ि बाहर आयो।
आज को रूप लखैं नँदलाल को, आजहि नैननि को फल पायो ॥४॥

मंद गयंद की चाल चलै कटि किंकिन नेवर की धुनि बाजै।
मोती के हारनि सौं हियरो हरिजू के बिलास हुलसनि साजै॥
सारी सुही 'मतिराम' लसै मुख संग किनारी की यौं छबि छाजै।
पूरन चंद पियूष मयूष मनो परिवेष की रेख बिराजै॥४॥

मोर-पखा 'मतिराम' किरीट मैं, कंठ बनी बनमाल सुहाई।
मोहन की मुसकानि मनोहर, कुंडल डोलनि मैं छबि छाई॥
लोचन लोल बिसाल बिलोकनि को न बिलोकि भयो बस माई?
वा मुख की मधुराई कहा कहौं? मीठी लगै अँखियान-लुनाई॥६॥

(रसराज)

दोहे

मो मन तम-तोमहि हरौ, राधा को मुख-चंद।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं, नँद-नंदन आनंद॥ १॥

मुंज गुंज को हार उर, मुकुट मोर-पर-पुंज।
कुंज बिहारी बिहरियै, मेरैई मन कुंज॥ २॥

पगी प्रेम नँदलाल कैं, भरन आपु जल लाइ।
घरी-घरी घर के तरैं, घरनि देति ढरकाइ॥ ३॥

पंत्रि औगुन कौ तनकऊ, प्रभु नहिं करत विचार।
केतकि कुसुम न आदरत, हर सिर धरत कपार॥ ४॥

निज बल कौं परिमान तुम, तारे पतित बिसाल।
कहा भयौ जु नहीं तरत्रु, तुम न खिस्याहु गुपाल॥ ५॥

बसिबे कौं निज सरबरनि, सुर जाकौं ललचाहिं।
सो मराल बकताल मैं, पैठन पावत नाहिं॥ ६ ॥

अद्भुत या धन कौ तिमिर, मो पै कह्यो न जाइ।
ज्यौं ज्यौं मनिगन जगमगत, त्यौं त्यौं अति अधिकाइ॥७॥

कोटि कोटि मतिराम कहि, जतन करौ सब कोइ।
फाटे मन अरु दूध मैं, नेह न कबहुँ होइ॥ ८ ॥

सुबरन बरन सुबास जुत, सरस दलनि सकुमार।
ऐसे चंपक कौं तजै, तैंहीं भौंर गँवार॥ ६ ॥

नखतावलि नख, इंदु, मुख, तनु-दुति दीप अनूप।
होति निसा नँदलाल मन, लखैं तिहारौ रूप॥१०॥

वंदन तिलक लिलार मैं, ऐसी मुख-छबि होति।
रूप भौन मैं जगमगै, मनौ दीप की ज्योति॥११॥

जब जब चढ़ति अटानि दिन, चंद-मुखी यह बाम।
तब तब घर घर धरत हैं, दीप बारि सब गाम॥१२॥

दुबराई गिरि जातु है, कंचन कामिनि बाँह।
उपदेस न ठहरात ज्यौं, दुरजन के उर माँह॥१३॥

दुख दीने हू सुजन जन, छोड़त निज न सुदेस।
अगरुडारियत आगि मैं, करत सुवासित केस॥१४॥

बिन देखैं दुख के चलैं, देखैं सुख के जाहिं।
कहौ लाल इन दृगनि के, अँसुवा क्यौं ठहराहिं॥१५॥

जो निसि दिन सेवन करै, अरु जो करै विरोध।
तिन्हैं परमपद देत प्रभु, कहौ कौन यह बोध॥१६॥

पगीं प्रेम नँदलाल कैं, हमैं न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइ कै, भीख न माँगत लोग॥ १७॥

मधुप त्रिभंगी हम तजीं, प्रगट परम करि प्रीति।
प्रगट करी सब जगत मैं, कटु कुटिलन की रीति॥ १८॥

हरि-मुख लखि लोचन सखी, सुख मैं करत विनोद।
प्रगट करत कुवलयनि कौ, चन्द्रोदय नैं मोद॥ १९॥

विषयनि नैं निरवेद उर, ज्ञान जोग व्रत नेम।
बिफल जानियौ ए बिना, प्रभु पद-पंकज प्रेम॥ २०॥

देखत दीपति दीप की, देत प्रान अरु देह।
राजत एक पतंग मैं, बिना कपट कौ नेह॥ २१॥

प्रगट कुटिलता जौ करी, हम पर स्याम सरोस।
मधुप जोग विष उगलियै, कछु न तिहारौ दोस॥ २२॥

हँसत बाल के वदन मैं, यौं छवि कछू अतूल।
फूली चंपक बेलि तैं, झरत चमेली फूल॥ २३॥

उदै भयो है जलद तू, जग कौ जीवन-दानि।
मेरौ जीवन हरतु हैं, कौन बैर मन मानि॥ २४॥

खल वचननि की मधुरई, चाखि साँप निज श्रौन।
रोम रोम पुलकित भए, कहत मोद गहि मौन॥ २५॥

मंत्रिनि के बस जो नृपति, सो न लहत सुख-साज।
मनहिं बाँधि दृग देत दृग, मन-कुमार कौं राज॥ २६॥

कहा भयौ तजि जात है, मलिन मधुप दुख मानि।
सुवरन बसन सुबास-युत, चंपक लहै न हानि॥ २७॥

बदन-चंद की चाँदिनी, देह-दीप की ज्योति।
राति बितैहूँ लाल उहिं, भौन राति सो होति॥ २८॥

सरद-चंद की चाँदिनी, को कहिए प्रतिकूल।
सरद-चंद की चाँदिनी, कोकहिए प्रतिकूल॥ २९॥

को हरि वाहन जलधि-सुत, को को ज्ञान-जहाज।
तहाँ चतुर उत्तर दियौ, एक वचन द्विजराज॥ ३०॥

स्याम रूप अभिराम अति, सकल बिगल गुन-धाम।
तुम निसि दिन मतिराम की, मति बिसरौ मतिराम॥ ३१॥

सेवक सेवा के सुनें, सेवा देव अनेक।
दीनबंधु हरि जगत है, दीनबंधु हर एक॥ ३२॥

अधर रंग बेसरि मुकत, मानिक बानिक लेत।
हँसत बदन दीपति बहुरि, होति हीर छबि सेत॥ ३३॥

गयो महाउर छूटि यह, रह्यौ सहज इक अंग।
फिरि फिरि झाँवति है कहा, रुचिर चरन के रंग॥ ३४॥

दरपन अमल कपोल मैं, परत पानि-प्रतिबिंब।
पुनि पुनि पोंछति पीक भ्रम, देखि आदरस बिंब॥ ३५॥

पीत अँगुलिया पहिरि कै, लाल लकुटिया हाथ।
धूरि भरे खेलत रहे, ब्रजवासिन ब्रजनाथ॥ ३६॥

(मतिराम-सतसई)

पद्माकर भट्ट

पद्माकर भट्ट ने काव्य-रसिकों के हृदय में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। रीतिकाल में बिहारी को छोड़ ऐसा लोकप्रिय कवि और कोई नहीं हुआ। इनके समय तक रीतिकालीन परम्पराबद्ध कविता पूर्ण उत्कर्ष को पहुँच चुकी थी। इनकी रचनाओं में उसका उत्कृष्ट रूप दिखाई देता है। रीतिकाल में इनके पश्चात् और कोई कवि इनकी जैसी प्रसिद्धि न पा सका।

पद्माकर-भट्ट तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था। इनका जन्म संवत् १८१० में बाँदे में हुआ। इनके पिता एक अच्छे कवि और संस्कृत के विद्वान् थे। इन्होंने भी पहले अपने पिता से कविता का अभ्यास किया और संस्कृत भाषा का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। इनकी रचनाओं के पढ़ने से प्रतीत होता है कि ये अनेक आश्रयदाताओं के यहां रहे होंगे। ये कुछ दिन मध्यप्रान्तान्तर्गत 'सागर' में महाराज रघुनाथराव (अप्पा साहब) के यहां रहे। महाराज रघुनाथराव से इन्होंने बहुत धन प्राप्त किया किन्तु कुछ दिन पश्चात् उनसे अनबन हो जाने के कारण ये फिर अपने जन्म स्थान बाँदे में आ गए। सुगरा के नोने अर्जुनसिंह की प्रशंसा में भी इन्होंने कुछ पद्य लिखे हैं। कहा जाता है कि अर्जुनसिंह इन्हें अपना गुरु मानते थे। गोसाईं अनूपगिरि उप-नाम हिम्मतबहादुर के आश्रय में रहकर इन्होंने उनकी प्रशंसा में

'हिम्मत-बहादुर-बिरुदावली' नामक वीरकाव्य लिखा। जयपुर के महाराज प्रतापसिंह के दरबार में भी ये बहुत दिन तक रहे। महाराज प्रतापसिंह के पुत्र जगतसिंह के समय में भी ये जयपुर पहुँचे और उनके नाम पर इन्होंने 'जगद्विनोद' लिखा। संभवतः इन्हें महाराज प्रतापसिंह के शासनकाल में जयपुर में अधिक सुखमय जीवन बिताने का अवसर मिला था, इसीलिये ये महाराज जगतसिंह के समय में फिर वहां पहुँचे। उदयपुर के महाराणा भीमसिंह और ग्वालियर के महाराज दौलतराव सेंधिया के दरबार में इनका अच्छा आदर हुआ था। इससे प्रतीत होता है कि अपने जीवन-काल में इधर-उधर भटकते ही रहे। अपने जीवन के अन्तिम दिन इन्होंने कानपुर में गंगातट पर व्यतीत किए और वहीं संवत् १८९० में इनका देहान्त हुआ।

पद्माकर की रचनाओं में 'हिम्मतबहादुर-बिरुदावली', 'पद्माभरण', 'जगद्विनोद', 'प्रबोध-पचासा' और 'गंगालहरी'; ये विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त 'राम-रसायन' नामक काव्य भी इनका लिखा हुआ माना जाता है किन्तु इसमें पद्माकर की अन्य रचनाओं का जैसा चमत्कार न होने के कारण कुछ विद्वान् इसे पद्माकर की कृति मानने में संकोच करते हैं।

'हिम्मतबहादुर-बिरुदावली' में वीररस का अच्छा परिपाक हुआ है। 'हिम्मत-बहादुर' बांदा के नवाब के एक प्रसिद्ध योद्धा थे, उन्हीं की वीरता का वर्णन इस काव्य में किया गया है। इसकी भाषा बड़ी ओजस्विनी और विषयानुकूल है।

'पद्माभरण' एक अलंकार-ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ 'चन्द्रालोक' के आधार

पर लिखा गया है किन्तु इसे हम 'चन्द्रालोक' का अनुवाद नहीं कह सकते। अलंकारों के लक्षण तो 'चन्द्रालोक' के लक्षणों से मिलते-जुलते हैं, पर उदाहरण उनके अपने ही हैं। उनमें नवीनता है और अलंकारों को स्पष्ट करने की शक्ति है। कहीं कहीं 'पद्माभरण' में अलंकारों का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो सका है। संभवतः यह त्रुटि लक्षणों के छन्दोबद्ध होने के कारण आई है। रीतिकाल के अलंकार-ग्रन्थों का यह एक साधारण दोष है। 'पद्माकर' भी इस दोष से न बच सके। रीतिकाल की लक्षण-ग्रन्थ लेखन-प्रणाली का अनुसरण करने के लिए वे भी बाध्य थे। आचार्यत्व की दृष्टि से वे अधिक सफल नहीं कहे जा सकते। हां, कवित्व की दृष्टि से यह एक अच्छा ग्रन्थ है।

'जगद्विनोद' में मुख्यतया 'नायिका-भेद' पर लिखा गया है, किन्तु भावों और रसों का निरूपण भी संक्षेप से किया गया है। षट्-ऋतु-वर्णन भी इसमें बहुत सुन्दर भाषा में हुआ है। नायिकाओं के हाव-भावों के सुन्दर चित्र इस ग्रन्थ में पर्याप्त हैं। रस-निरूपण भी अच्छा है। इसके उदाहरण भी अधिकांश मौलिक हैं। लक्षणों में भी अधिक त्रुटियाँ नहीं दिखाई देतीं। इसीलिये इस ग्रन्थ का काव्यरसिकों ने अच्छा आदर किया है।

'प्रबोध पचासा' और 'गंगालहरी' उनकी वृद्धावस्था की रचनाएँ हैं। इनमें उनकी भक्ति-भावना प्रतिबिम्बित हुई है। 'गंगालहरी' संस्कृत के पंडितराज जगन्नाथ की 'गंगालहरी' के ढंग पर लिखी गई है। इसमें गंगा के स्वरूप और उसकी महिमा का अच्छा वर्णन किया गया है। सार, संदेह, उल्लेख, मालोपमा आदि अलंकारों का चमत्कार इसमें विशेष पाया जाता है।

पद्माकर की कविता में स्वाभाविकता और भावमयता पर्याप्त है। रीतिकाल के अन्य कवियों की भाँति दूर की कौड़ी लाने का प्रयत्न उन्होंने नहीं किया। उनकी भाषा प्रांजल और परिमार्जित है उन्होंने वीर, शृङ्गार और शान्त तीनों रसों पर ग्रन्थ लिखे हैं और इन तीनों रसों के अनुकूल विविधरूपमयी भाषा का प्रयोग भी बड़ी सफलता से किया है। कहीं उनकी भाषा वीररस को उभारने में समर्थ है, कहीं वह शृङ्गार की सजीव मूर्ति उपस्थित करती है और कहीं वह संसार की असारता का चित्र खींचती है। रसानुकूल भाषा के प्रयोग में वे सिद्धहस्त थे। शाब्दिक चमत्कार लाने की प्रवृत्ति तत्कालीन अन्य कवियों की भाँति 'पद्माकर' में भी थी किन्तु उनकी यह प्रवृत्ति अरुचिकर सीमा तक बहुत कम पद्यों में पाई जाती है। विशेषकर वर्णनात्मक प्रसंगों में ही अनुप्रास की प्रचुरता दिखाई देती है। जैसे :—

"तहँ दुक्का-दुक्की, मुक्का-मुक्की, डुक्का-डुक्की होन लगी।
रन इक्का-इक्की, झिक्का-झिक्की, फिक्का-फिक्की, जोर जगी॥"

इस पद्य में अनुप्रास की झड़ी सी लगा दी गई है। यह भाषा रसानुकूल होने पर भी रसाभिव्यक्ति में असमर्थ है। किन्तु इस प्रकार के उदाहरण उनकी कविता में अधिक नहीं हैं। उनकी कविता में उनके जीवन की भिन्न-भिन्न दशाएँ प्रतिबिम्बित हुई हैं। 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' में उनका नवयौवन 'पद्माभरण' और 'जगद्विनोद' में उनका तारुण्य और 'प्रबोधपचासा' तथा 'गङ्गालहरी' में उनका वार्धक्य झलकता है।

पद्माकर की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। कहीं कहीं उस पर

बुंदेली और अरबी-फ़ारसी का भी प्रभाव पड़ा है। प्रारम्भिक रचनाओं में उनकी भाषा कुछ प्राचीनता लिए हुए है किन्तु पश्चात्कालीन कृतियों में हमें उसका निखरा हुआ रूप मिलता है।

पद्माकर की कविता परम्पराबद्ध काव्य-प्रणाली को लक्ष्य रख कर प्रवाहित हुई। रीतिकाल में अन्य कवियों के समान उन्होंने भी अपनी कविता में अपने आश्रयदाताओं का यशोगान किया और लक्षणग्रन्थों के रूप में अपनी रचनाएँ लिखीं। वे अपने समय की परिस्थिति को न दबा सके। फिर भी कविता में भाषा-सौष्ठव, स्वाभाविकता और अनेकरूपता आदि विशेषताओं के कारण रीतिकाल के कवियों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

हिम्मतबहादुर-वीरता-वर्णन

जुद्धहिं सुभट त्रिसुद्ध सुद्ध, अति उद्धत क्रुद्धहिं।
बुद्धहिं निज निज बैर, दौरि करि खल-दल रुद्धहिं॥
हंकहिं हँसहिं हुमंकि हेरि, हरषहिं नहिं संकहिं।
झंकहिं झुकि-झुकि झपटि, लपटि लरि बमकि बमंकहिं॥
तहँ 'पद्माकर' कबि बरन इमि, तमकि ताउ दुहुँ दल भयउ।
नृप-मनि अनूपगिरि भूप जब, करत खग्ग रन जस ययउ॥ १॥

करि खग्ग दग्ग उदग्ग अति, अरि बग्ग आये उमड़ि कै।
गज-घटन माहिं महाबली, घालत हथ्यारनि घुमड़ि कै॥
पृथु रिक्त नित्त सुवित्त दै, जग चित्ति जित्ति अनूप की।
बर बरनिये बिरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की॥ २॥

तहँ दुहुँ दल उमड़े, घन-सम घुमड़े, झुकि झुकि झुमड़े, जोर भरे।
तकि तबल तमंके, हिम्मत हंके, बीर बमंके, रन उभरे॥
बोलत रन करखा, बाढ़त हरषा, बाननि बरषा होन लगी।
उलझारत सेलैं, अरि-गन ठेलैं, सीननि पेलैं, रारि जगी॥ ३॥

बंदी-जन बुल्ले, रोसन खुल्ले, डग डग डुल्ले, कादर हैं।
धौंसा-धुनि गज्जे, दुहुँ दिसि बज्जे, सुनि धुनि लज्जे, बादर हैं॥
नीसान सु फहरैं, इत-उत छहरैं, पावक-लहरैं-सी लगतीं।
छुवती नकि नाका, मनहु सलाका, धुजा पताका, नभ जगतीं॥४॥

कढ़ि कोटनवारे, बीर हँकारे, न्यारे-न्यारे, अभिरि परे।
करवाननि झारैं, सुभट बिदारैं, नेकु न हारैं, रोष भरे॥
कानन लौं तानैं, गहि कम्मानैं, अरिन निसानैं, सिर घालैं।
सूधे अति पैठैं मुच्छनि ऐठैं, भुजनि उमैठैं, गहि ढालैं॥५॥
अत्रन की मूकैं, घालि न चूकैं, दै-दै कूकैं, कूदि परे।
गहि गरदन पटकैं, नेकु न भटकैं, झुकि-झुकि झटकैं, उमंग भरे॥
रन करत अड़ंगे, सुभट उमंगे, बैरिन बंगे, करि झपटैं।
सीसन की टक्कर, लेत उटक्कर, घालत छक्कर, लरि लपटैं॥६॥
तहँ हत्था-हत्थी, मत्था-मत्थी, लत्था-पत्थी, माचि रही।
काटैं कर कट कट, विकट सुभट भट, कासों खटपट, जाति कही॥
गहि कठिन कटारी, पेलत न्यारी, रुधिर पनारी, बमकि बहै।
खंजर खिन खनकैं, ठेलत ठनकैं, तन सनि सनि कैं, हिलगि रहैं॥७॥
गहि गहि पिसकब्जैं, मरमनि गब्जैं, तकि तकि नब्जैं, काटत हैं।
कम्मर तें छूरे, काटत पूरे, रिपु-तन रूरे, काटत हैं॥
करि धक्का-धक्की, हक्का, हक्की, ढक्का-ढक्की, मुदित मची।
घन घोर घुमंडी, रारि, उमंडी, किलकल-चंडी, निरखि नची॥८॥
एकै गहि भाले, करि मुख लाले, सुभट उताले, घालत हैं।
तोरत रिपु-ताले, आले, आले, रुधिर-पनाले चालत हैं॥
झारत असि जुरि जे, बीरनि उर जे, पुरजे पुरजे, कोटि करैं।
हथियारनि सूटैं, नेकु न हूटैं, खलदल कूटैं, लपटि लरैं॥९॥
तहँ ढुक्का-ढुक्की, मुक्का-मुक्की, डुक्का-डुक्की होन लगी।
रन इक्का दुक्की, भिक्का-भिक्की, फिक्का-फिक्की, जोर जगी॥

काटत चिलता हैं, इमी असि बाहैं, तिनहिं सराहैं, बीर बड़े।
टूटे कटि झिलमैं, रिपु रन-बिलमैं, सोचत दिल मैं, खड़े खड़े ॥१०॥
ढालन के ढक्के लागत पक्के, इत उत थक्के, थरकत हैं।
इक-इक्कनि टक्के, बँधे झमक्के, तननि तमक्के, तरकत हैं॥
ललकत फिरि लपटे, छत्तिन छपटे, करि अरि चपटे पेरत हैं।
भट भुजनि उखारत, छिति पर डारत, हँसि हुड़ कारत, हेरन हैं॥११॥
ठोंकत भुजदंडनि, उमड़ि उदंडनि, प्रबल प्रचंडनि, चाउ भरे।
करि खल-दल खंडन, बैरि बिहंडन नौऊ खंडन, सुजस करे॥
दस्ताने करि-करि, धीरज धरि-धरि, जुद्ध उभरि भरि, हंकत हैं।
पैठत दुरदन में, रोषित रन मैं, नेकु न मन में, संकत हैं ॥१२॥
निकसी तहँ खग्गैं, उमड़ि उमग्गैं, जगमग जग्गैं, दुहुँ दल मैं।
भाँतिन भाँतिन की बहुजातिन की, अरि-पाँतिन की, करि कलमैं।
तहँ कढ़ी मगरबी, अरि-गन चरबी, चापट करबी-सी काटैं।
जगि जोर जुनब्बै, फहरत फब्बैं, सुंडनि गब्बैं, फर पाटैं ॥१३॥

× + × ×

सुभ सुख-समूह फतूह लिय, हिय मंजु मोदन सों भरै।
काली कपाली निस-दिना, नित नृपति की रच्छा करै॥
पृथु-रित्ति नित्त सुवित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की।
बर बरनिये बिरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की ॥१४॥

(हिम्मतबहादुर-बिरदावली)

जगतसिंह-प्रताप-वर्णन

छत्रिन के छत्र छत्रधारिन के छत्रपति,
छाजत छटानि छिति छेम के छवैया हौ।
कहै 'पदमाकर' प्रभाव के प्रभाकर,
दया के दरियाव, हिंद-हद्द के रखैया हौ॥
जागते जगतसिंह साहेब सवाई भूप,
श्रीप्रताप-नृप-नंद-कुलचंद रघुरैया हौ।
आछे रहौ राजराज राजन के महाराज,
कच्छ-कुल-कलस हमारे तौ कन्हैया हौ॥१॥

आप जगदीस्वर है जग में बिराजमान,
हौं हुँ तौ कवीस्वर ह्वै राजतै रहत हौं।
कहै 'पदमाकर' ज्यों जोरत सुजस आप,
हौं हूँ त्यों तिहारो जस जोरि उमहत हौं॥
श्रीजगतसिंह महाराज मान सिंहावत,
बात यह साँची कछु काँची ना कहत हौं।
आप ज्यों चहत मेरी कविता दराज,
त्यों मैं उमरि दराज राज! रावरी चहत हौं॥२॥

जल क्रीड़ा

जाहिरै जागति-सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी।
त्यों 'पदमाकर' हीर के हारनि गंग-तरंगन को सुखदेनी॥
पायन के रँग सो रँगि जाति सी भाँति-ही-भाँति सरस्वति-सेनी।
पैरै जहाँई-जहाँ वह बाल तहाँ-तहाँ ताल में होति त्रिबेनी॥१॥

बसन्त-वर्णन

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन-कलीन किलकंत है।
कहै 'पदमाकर' परागन में पौन हू में,
पानन में पिक में पलासन पतंग है॥
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में,
देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरो बसंत है॥ १॥

(जगद्विनोद)

शिव-महिमा

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत पै,
पावत न पार जा अनंत गुनपूरे को।
कहै 'पदमाकर' सुगाल के बजावत ही,
काज करि देत जन-जाचक जरूरे को॥
चंद की छटान-जुत पन्नगफटान-जुत,
मुकुट बिराजै जटाजूटन के जूरे को।
देखौ त्रिपुरारि की उदारता अपारि जहाँ,
पैये फल चारि फूल एक दै धतूरे को॥ १॥

राम महात्म्य

मानुष को तन पाय अन्हाय, अघाय पियौ किन गङ्ग को पानी।
भाषत क्यों न भयो 'पदमाकर' राम ही राम रसायन बानी ॥
सारंगपानि के पायन सों, तजि कै मन को कत होत गुमानी।
मोटी मुचंड महामतवारिनि, मूड़ पै मीच फिरै मड़रानी ॥ १ ॥
और सबै संग सापनो है, जग आपनो एक हितू रघुराया।
ताहि न भूलि हू भूलियो तू 'पदमाकर' पेखनो पेख पराया ॥
नैन मुँदे पर जहाँ को तहाँ जकि-सी रहि जाति जमाति औ जाया।
माया चलाय कहौ क्यों चलै, चलै आपने संग न आपनी काया ॥ २ ॥

भाये 'पदमाकर' न तैसे भाग जङ्गन के,
जैसे भगवानै भीलनी के फल भाये हैं।
भोजन की भामा सत्यभामा भुलाई भलें,
दुखी वा सुदामा के सु चाउर चबाये हैं ॥
छप्पन सुभोग दुरजोधन के त्यागि करि,
आसा गहि बेग तें बिदुर घर आये हैं।
धारा धाये फिरत पृथा पै नेम-नीरधि में,
पाये जिन राम तिन प्रेम ही सों पाये हैं ॥ ३ ॥

को किहि को सुत को किहि को पितु को किहि को पति कौन की को ती
कौन को को जग ठाकुर चाकर, को 'पदमाकर' कौन को गोती ॥
जानकी जीवन जानि यहै, तजि दे तू सबै धन धाम औ धोती।
हौं तो न लोटतो लोभ लपेट में पेट की जो पै चपेट न होती ॥४॥

(प्रबोधपचासा)

गंगा-वर्णन

विधि के कमंडल की सिद्धि है प्रसिद्धि यही,
हरि-पद पंकज-प्रताप की लहर है ।
कहै 'पद्माकर' गिरीस-सीस-मंडल के
मुंडन की माल ततकाल अघहर है ॥
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्य-पथ
जन्हु-जप-जोग-फल-फैल की फहर है ।
छेम की छहर गंगा रावरी लहर,
कलिकाल को कहर जमजाल को जहर है ॥१॥
गंगाजू तिहारे तीर आछी भाँति 'पद्माकर'
देखि एक पातकी की अद्‌भुत गति है ।
आइ कै गोविंद बाँध धरि कै गरुडजू पै,
आपनेई लोक जाइबे की कीन्ही मति है ॥
जौं लौं चलिये को भये गाफिल गोविंद तौ लौं,
चोरि चतुरानन चलाई हंस गति है ।
जौ लौं चतुरानन चितैबे चारों ओर,तौ लौं,
बृष पै चढाइ लै गयोई बृषपति है ॥२॥
अधम अजान एक चढ़ि कै बिमान भाख्यो,
बूझत हौ गंगा तोहि परि-परि पाइ हौं ।
कहै 'पद्माकर' कृपा करि बतावै साँची,
देखे अति अद्‌भुत रावरे सुभाइ हौं ॥

तेरे गुन-गान ही की महिमा महान मैया,
कान-कान नाइ कै जहान-मध्य छाइ हौं।
एक मुख गाये ता के पंचमुख पाये, अब
पंचमुख गाइहौं तौ केते मुख पाइ हौं ॥३॥
जम के जसूस बिनै जम सों हमेस करैं,
तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारो है।
बड़े बड़े पापी औ सुरापी द्विजतापी, तहाँ
चलन न पावै कहूँ हुकुम हमारो है॥
कहै 'पदमाकर' सुब्रह्मलोक बिस्नुलोक,
नाम लै कै कोऊ सिवलोक को सिधारो है।
बैठी सीस गंगा के तरंगा ह्वै अभंगा, ऐसी
गंगा ने उठाइ दीन्हों अमल तिहारो है ॥४॥
नीर के निकट रेनुरंजित लसै तों तट,
एकपट चादर की चाँदनी बिछाई-सी।
कहै 'पदमाकर' त्यों करत कलोल लोक,
आवरत पूरे रासमंडल की पाइ-सी॥
बिसद बिहंगन की बानी राग राचती-सी,
नाचती तरंग ऐन आनँद बधाई-सी।
अघ की अँधेरी कहूँ रहन न पाई, फिरै
धाई धाई गंगाधर सरद-जुन्हाई सी ॥५॥
(गंगालहरी)

बाबा दीनदयाल गिरि

बाबा दीनदयाल गिरि उच्च श्रेणी के कवियों में गिने जाते हैं। इनका जन्म काशी में शुक्रवार बसंतपंचमी संवत् १८५९ में हुआ था। इनकी बाल्यावस्था में ही इनके माता-पिता का देहान्त हो गया और ये गायघाट वाले मठ के महन्त कुशागिरि के शिष्य बन कर उन्हीं के साथ रहने लगे। महंत कुशागिरि के तीन शिष्य थे-- दीनदयाल गिरि, स्वयंवर गिरि और रामदयाल गिरि। महंत कुशागिरि बहुत कुछ ऋण छोड़ कर परलोक सिधारे और उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी बहुत सी जायदाद नीलाम हो गई। तदनन्तर तीनों शिष्यों में कुछ अनबन हो गई। जमींदारी बिक जाने और इस अनबन के कारण बाबा जी को बहुत दुःख हुआ। अब ये देहली-विनायक के पास मौठली गाँववाले मठ में रहने लगे। सुना जाता है कि जमींदारी बिक जाने पर इन्हें दुःखी देख एक बार अमेठी के राजा साहब इनके पास आए और उन्होंने इन्हें अपने यहाँ लेजाने का आग्रह किया, परन्तु इन्होंने उनके अधीन रहना उचित न समझा। ये स्वतंत्र-प्रकृति के पुरुष थे। ये मठधारी शैव संन्यासी थे किन्तु साम्प्रदायिक कट्टरपन इनमें न था। इनकी रचनाओं से प्रतीत होता है कि कृष्ण के प्रति भी इनके हृदय में पर्याप्त आदर था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गोपालचंद्र (गिरिधरदास) इनके परम मित्र थे। उन्हीं की प्रेरणा

से ये काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए। इनकी मृत्यु संवत् १९१५ में हुई।

दीनदयाल गिरि के ये ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—'दृष्टान्त-तरंगिणी', 'अनुराग-बाग', वैराग्य दिनेश', 'अन्योक्ति-माला' और अन्योक्ति कल्पद्रुम'। 'दृष्टान्त-तरंगिणी' की रचना संवत् १८७९ में, 'अनुराग-बाग' की सं० १८८८ में, 'वैराग्यदिनेश' की सं० १९०६ में और 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' की सं०१९१२ में हुई। 'अन्योक्ति-माला' का रचनाकाल अज्ञात है। संभवतः यह इनकी प्रारम्भिक रचना है। 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' इसी का परिवर्द्धित संस्करण है। इसी प्रकार बाबा जी का रचनाकाल संवत् १८७९ से १९१२ तक माना जाता है। उपर्युक्त रचनाओं में 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' अधिक लोकप्रिय हुआ है। सहृदय-समाज में इसका विशेष आदर है। 'दृष्टान्त-तरंगिणी' में नीतिसम्बन्धी दोहे हैं। 'अनुराग-बाग' में श्रीकृष्ण की लीलाओं का सुन्दर वर्णन है। 'वैराग्य-दिनेश' में भक्ति और ज्ञान-सम्बन्धी पद्य हैं और साथ ही ऋतुवर्णन भी किया गया है। इनके अतिरिक्त 'विश्वनाथ-नवरत्न' नामक एक दूसरी रचना भी इनकी बनाई हुई कही जाती है।

बाबा दीनदयाल गिरि एक सरल स्वभाव वाले रसिक व्यक्ति थे। अपनी चमत्कारपूर्ण अन्योक्तियों और नीति-सम्बन्धी दोहों से ये जनता का मनोविनोद किया करते थे। ये बड़े दयालु और आत्माभिमानी थे। आपत्ति के समय भी ये किसी के आगे हाथ पसारना अनुचित समझते थे। इनका चरित्र उज्ज्वल था। अन्य महंतों के समान इन्होंने धन का दुरुपयोग नहीं किया। इनका जीवन इनकी कृतियों में भली भाँति प्रतिबिम्बित हुआ है।

बाबा जी को सच्चा कवि-हृदय प्राप्त था। इनमें भावुकता पर्याप्त थी। इनकी अन्योक्तियाँ हिन्दी-साहित्य में अद्वितीय हैं। वे इनके सांसारिक जीवन से विशेष सम्बन्ध रखती हैं। संन्यासी होने पर भी लोकव्यवहार का इन्हें पूरा ज्ञान था। इनकी अन्योक्तियों में अनुभूति की पर्याप्त मात्रा है। जो लोग लोक-व्यवहार का अच्छा अध्ययन कर सकते हैं उनकी लेखनी से ही ऐसी उक्तियाँ प्रसूत हो सकती हैं। सामाजिक, नैतिक, धार्मिक सभी विषयों पर इन्होंने मर्मस्पर्शी अन्योक्तियाँ कही हैं। इनके नीति-सम्बन्धी दोहों में भी यही विशेषताएँ हैं। नित्य प्रति के व्यवहार में आनेवाली साधारण बातों को इन्होंने मार्मिक ढंग से कहा है। इनके अधिकांश दोहे इनके अनुभव के परिणामस्वरूप ही बने होंगे। उनमें इनकी वाग्विदग्धता और सहृदयता झलकती है। एक उदाहरण लीजिए:—

"संकट हूँ मैं होय के पर दुख हरैं महानु।
जलद-पटल-झंपित तऊ जग तम नासत भानु॥'

दीनदयाल गिरि की रचना-शैली मनोहर और सरस है। इनकी भाषा साफ-सुथरी चलती हुई ब्रजभाषा है। अव्यवस्थित वाक्यों का प्रयोग इन्होंने नहीं के बराबर किया है। रीतिकाल से सम्बन्ध रखने पर भी इन्होंने तत्कालीन प्रणाली का अन्धानुसरण करके अपनी रचनाओं को लक्षण-ग्रन्थ का रूप नहीं दिया। ये स्वतन्त्रता-प्रिय प्राणी थे, साहित्यिक क्षेत्र में भी इन्होंने अपनी कविता की स्वतंत्र, स्वाभाविक धारा बहाई। भरती के शब्दों की भरमार इनकी कविता में नहीं है। अक्षरमैत्री की ओर इनका ध्यान बहुत कम गया है। इनकी कविता में

प्रसादगुण प्रधान है, उसमें क्लिष्टता और अस्वाभाविकता नहीं।

'अनुराग-बाग' में श्रीकृष्ण की लीला-प्रिय मूर्ति की झाँकी बड़ी सरस पदावली में उतारी गई है। वात्सल्य-रस-वर्णन में इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। कृष्ण के विरह में व्याकुल मातृ-हृदय का स्पर्श इन्होंने बड़ी सहृदयता के साथ किया है। इनका कविता-काल रीतिकाल का अंतिम और आधुनिक काल का प्रारम्भिक काल है, इसलिये इनकी कविता में इन दोनों युगों की सन्धि सी दिखाई देती है। इनकी भाषा पर आधुनिक काल की खड़ीबोली का भी प्रभाव लक्षित होता है। कहीं कहीं शुद्ध संस्कृत के शब्दों का प्रयोग हुआ है और वे आधुनिक काल के अरुणोदय की सूचना देते हैं।

कृष्ण-शोभा-वर्णन

चरन कमल राजैं मंजु मंजीर बाजैं।
गमन लखि लजावैं हँसऊ नाहिं पावैं ॥
विसद कदम छाहीं क्रीड़ते कुँज माहीं।
लखि लखि हरि सोभा संभु को चित्त लोभा ॥ १ ॥
कनक बरन काछे काछनी धेनु पाछे।
विरहत बनवारी गोप के वेष धारी ॥
ललित लकुट हाथे मोर के पच्छ माथे।
सकल जगत स्वामी भानुजा तीर गामी ॥ २ ॥
विहरत जमुना के तीर मैं कृष्ण राजैं।
निरखि सुभग सोभा कोटि कंदर्प लाजैं ॥
अधर मधुर बंसी बाजती चित्त हारी।
सुनत धुनि न मोहैं कौन हैं देहधारी ॥ ३ ॥
सजल जलद नीके स्याम तै होत फीके।
पट तड़ित विनिंदैं भूषि सोहैं गोविंदैं ॥
बिलसति बनमाला वैजयंती विसाला।
चलत गति रसाला मोहते नंद लाला ॥ ४ ॥
कुटिल अलक सोहैं सीस चीरा लसो है।
मदन मन फसो है स्याम अंगे बसो है ॥

सकल नयम ताके भक्त के भे पताके।
निमिषहुँ जिन ताके धन्य ताके पिता के ॥ ५ ॥

उद्धव के प्रति नंद-यशोदा वचन

बूझत नंद जसोमति बात कहो कसलात उतै दोउ भाई।
आवहिंगे कब प्रान निवास उदास सखा सब लोग लुगाई ॥
पीत पटी सिर लै लकुटी कर या जमुना की तटी सुखदाई।
फेरि कहो कब देखिहों ऊधव या बन चारत धेनु कन्हाई ॥ १ ॥
लालन गे जब तें तब तें बिरहानल जालन तें मन डाढ़े।
पालत हे ब्रज गायन ग्वाल हुतो जब आवत संटक गाढ़े ॥
स्याम बिना सुख धाम नहीं छिनही छिन जात महा दुख बाढ़े।
फेरि कहो कब देखिहों ऊधव माधव माखन माँगत ठाढ़े ॥ ॥
डोलत बाल मराल कि चालसों खेलत लाल फिरै ब्रजखोरी।
मोहन लाल बिसाल हिये पर सोहत नील सुपीत पिछोरी ॥
साथ सखा सिर मोरपखा धरि हाथ नचावत है चक डोरी।
फेर कहो कब देखियों ऊधव स्याम लला बलिराम कि जोरी ॥३॥
सोवत ढाँकि हुते पटपीत सों भोर भये मुख-पंकज खोलत।
दै जननी मुहि माखन भावत धावत बालन संग कलोलत ॥
लागत के कहि तात गरे सुनिहों कब तोतरे बैननि बोलत।
फेर कहो कब देखि हों ऊधव माधव को इन आँगन डोलत ॥ ४ ॥
एक समै लिये गोहन ग्वालन मोहन चोरि कै खात दही।
ऊधव जू छल सों हरिये हरि की जसुदा दोउ बाँह गही ॥

ऊखल बाँधि दयो डर ता छिन आँखिन ते जलधार बही।
तो तकसीर भई हम तें सुत जो उन यादि करैं तो सही ॥ ५ ॥
अवधेस नरेस कि प्रीति सही प्रिय के बिनु प्रान पयानु कियो है।
सँग फूटत फूट से फूटों नहीं मम पाहन हूँ ते कठोर हियो है॥
हम तैं वह मीन प्रवीन बड़ो जल ते पल एक नहीं न जियो है।
अब ऊधो हहा बलबीर बिछोहते क्यों बिधिना मोहि धीर दियो है ॥६॥

झाखति जसोदा पाय परों मैं तिहारे ऊधो,
कहियो बुझाय मेरी बिनती कन्हैया सों।
जा दिन पधारे पग गोकुल तें प्रानप्यारे,
गोकुल बिचारे भूखे फिरैं तासु मैया सों।
पावहिं विपुल पीर बछरा बिपिन गेह,
धावहिं अघार नेह लावहिं न गैया सों।
सूखि रहे कुंज पुंज गुंजत न भौंर भीर,
एहो बलबीर कैसे रह्यो जात मैया सों ॥ ७ ॥
प्रान के अधारे मेरे बारे कों भुलाय ल्यावैं,
कहियो बुझाय ऊधो प्यारे बल भैया सों।
वा दिन की बात भूलि गई तुम्हें मेरे तात,
खात है न दही भात अरुझे जुन्हैया सों॥
खेलत उमंग भरे संग सखा बालन के,
लालन क्यों रूसि रहे ब्रज के बसैयासों।
बूड़त मझार धार निराधार गोपी ग्वार,
कीजै एक बार पार कृपामई नईया सों ॥ ८ ॥
(अनुराग-बाग)

दोहे

हरि के सुमिरे दुख सबै लघु दीरघ अघ जाहिं।
जैसे केहरि भूरि भय करि मृग दूरि नसाहिं॥ १ ॥
अधम मलीन प्रसंग तें अधमै ही फल होत।
स्वाति अमृत अहि मुख परे बनि विष होत उदोत॥ २ ॥
साधुन को खल संग मैं आदर अंग नसाय।
तपित लोह संदोह मैं जिमि जल हू जलि जाय॥ ३ ॥
मानत हैं बहु दीन कौं, आए सरन महान
छीन कला ससि सीस मैं धारत ईस सुजान॥ ४ ॥
परे विपति मैं दुष्ट कों मोचत नाहिं प्रवीन।
बंधन तै अहि छुटि धरै करै प्रान ते हीन॥ ५ ॥
नीच महत के संग ते पापत पद सुमहान।
कीट कुसुम के सँग करै सिव सिर ऊपर थान॥ ६ ॥
सब विधि प्रबल बिरोध तें होति निबल की हानि।
युद्ध कुचजुत करि करै दरै तरुनि की खानि॥ ७ ॥
पूजत लोग मलीन कों पावन जन पूजैं न।
करन प्रान सुबरन लसैं, लेपत कज्जल नैन॥ ८ ॥
नीच संग ते सुजन की मानि हानि ह्वै जाय।
लोह कुटिल के संग तें सहै अगिन घन घाय॥ ९ ॥
नृप मानत है रूप करि गुनहीनहु सो अंग।
गुंजा गुन ते रहितऊ तुलति कनक के संग॥ १० ॥

बड़े बड़न के भार कों सहैं न अधम गँवार।
साल तरुन मैं गज बँधै नहिं आँकन की डार ॥ ११ ॥
मलिन सुता के विमल सुत उपजत नहिं संदेह।
होत पंक ते पदुम है पावन परमागेह ॥ १२ ॥
अति अद्‌भुततर वस्तु सो लहत महत आगार।
रतन अमोलिक सिंधु बिनु मिलै न कोटि प्रकार ॥ १३ ॥
सुजन आपदन मैं करैं औरन के दुख दूर।
मह़ि गो कनक दिलावहीं ग्रसे राहु ससि सूर ॥ १४ ॥
है अजीत जो गुनि करैं निबल सुमति संघात।
बहु तिन तै गुन वट नतें कुंजर बाँधे जात ॥ १५ ॥
साधुन की निंदा बिना नहीं नीच विरमात।
पियत सकल रस काक खल बिनु मल नहीं अघात ॥ १६ ॥
कीजै सत उपदेश कों होय सुभाव न आन।
दारु भार करि तपित जल सीतल होत निदान ॥ १७ ॥
कौन न करैं महान हिय पाय खलन तें दूष।
लौन सींचि कर पीडिए तऊ मधुर रस ऊष ॥ १८ ॥
जैसे घनगन गगन छन आवत करत पयान।
तैसे धन जग छनिक है विद्या दुरलभ मान ॥ १६ ॥
अति से सूधे मृदु बने नहीं कुशल जग माहिं।
काटत सरल सुतरुन को त्यौं वन कुटिलहि नाहिं ॥ २० ॥
भीर परै जो बड़नि कौं वारि सकैं नहिं नीच।
गिरि दव घनहीं तें बुझै नहीं घटन तैं सींच ॥ २१ ॥

किए करम विपरीत तऊ तऊ संत सोभंत।
नील कंठ भे खाय विष शिव छबि लहत अनंत ॥ २२ ॥
संकट हूँ मैं होय कै पर दुख हरैं महानु।
जलद पटल झंपित तऊ जग तम नासत भानु ॥ २३ ॥
सुकृत साधु मैं बढ़त है नीच बीच लै होय।
परसत जल मैं तेल ज्यों छार माह छय होत ॥ २४ ॥
भाग्यहीन निज दोष तैं दूखैं सबै अथाह।
वदन वक्र अपनो कहो दोष मुकुर को काह ॥ २५ ॥
नहिं धन धन है बुध कहैं विद्या वित्त अनूप।
चोरि सकै नहिं चोरऊ छोरि सकै नहि भूप ॥ २६ ॥
छीर होत तृन खाय कै पय ते विष ह्वै जाय।
यहि विधि धेनु भुजंग रद पत्र कुपात्र लखाय ॥ २७ ॥
लंबी साढ़ी मूढ़ रचि करत सुधी सम गौन।
फिरत काक कोकिल बन्यो जब लगि धारै मौन ॥ २८ ॥
बारम्बार विचार तें उपजै ज्ञान प्रकास।
ज्यों अरनी संघरन तें प्रगटै गुपुत हुतास ॥ २९ ॥
सबै काम सुधरैं जबै करैं कृपा श्रीराम।
जैसे कृषी किसान की उपजावे घनस्याम ॥ ३० ॥

(दृष्टान्त तरंगिणि)

अन्योक्तियाँ

रसाल-अन्योक्ति

जानैं नहि तव माधुरी मंद मरंद सुगंध।
हे रसाल अज कूर कपि कोल क्रमेलक अंध॥
कोल क्रमेलक अंध फूल फल मूल विनासक।
साख बिदारनिहार दुखद दुति ग्रासक त्रासक॥
एकै दीनदयाल रसज्ञ सिलीमुख मानैं।
महा मीत महि माँहु प्रीति महिमा तव जानैं॥ १॥

मधुकर-अन्योक्ति

सोई विपिन बिलोकिए हे मधुकर यहि बेरि।
हा छबि रही निदाघ अब रही राख की ढेरि॥
रही राख की ढेरि जहाँ देखी वह सोभा।
लता सुमनमय पेषि सुमन तेरो जहँ लोभा॥
बरनै दीनदयाल अहो दैवी गति गोई।
चहै भँवर तूं भूलि भवै न विपिन यह सोई॥ २॥

वृक्ष अन्योक्ति

पाई तुम प्रभुता भली चहुँ दिसि अलि गुंजार।
हे तरु तटिनी तीर के करि लै कछु उपकार॥
करि लै कछु उपकार आजु रितुराज बिराजै।
डार सुमन के भार रहीं झुकि कै छबि छाजै॥

बरनै दीन दयाल पथिन दै छाँह सुहाई।
पच्छिन को प्रतिपाल करै किन प्रभुता पाई॥ ३॥

करील-अन्योक्ति

धारयो दल न करीर तुम बहु रितुराजन पाय।
यहै त्याग दिढ़ देखि कै प्रिय कीन्यो जदुराय॥
प्रिय कीन्यो जदुराय रमैं तव कुंजनि माहीं।
और सबै तरुराज ताहि दिसि देखत नाहीं॥
बरनै दीनदयाल ऊँच नहिँ नीच बिचारयो।
जो जग धरयो विराग ताहि हरि हित सों धारयो॥ ४॥

शाल्मली-अन्योक्ति

सेमल बिना सुगंध तूं करत मालती रीस।
अलि रे भ्रम दै सुकन कों नहिँ जैहै हरि सीस॥
नहिं जैहै हरि सीर भूल जनि लखि निज लाली।
जैहै बेगि बिलाय ल्याय मतिमद को खाली॥
बरनै दीनदयाल जगत मैं बिन गुन जे खल।
करैं वृथा अभिमान जथा तरु मैं तू सेमल॥ ५॥

चातक-अन्योक्ति

लागे सर सरवर परयो करी चंच घन घोर।
धनि धनि चातक प्रेम तव पन पाल्यो बरजोर॥
पन पाल्यो बरजोर प्रान परिजंत निबाह्यो।
कूप नदी नद सिन्धु ताल जल एक न चाह्यो॥
बरनै दीनदयाल स्वाति बिन सब ही त्यागे।
रही जनम भरि बूँद आस अजहूँ सर लागे॥ ६॥

शुक-अन्योक्ति

तजि कै दाड़िम मूढ सुक खान गयो कित वेल।
काँटनि सौं वेधित भयो भूलि गयो सब खेल॥
भूलि गयो सब खेल पंख लासा लपटायो।
गिरयो राख मैं जाय जगत मैं काक कहायो॥
बरनै दीनदयाल कहा खग रोवै लजि कै।
करु मति कौं धिक कोटि कठिन सेयो मृदु तजि कै॥ ७॥

सिंह-अन्योक्ति

टूटे नख रद केहरी वह बल गयो थकाय।
हाय जरा अब आय कै यह दुख दयो बढ़ाय॥
यह दुख दयो बढ़ाय चहूँ दिसि जंबुक गाजैं।
ससक लूंबरी आदि सुतंत्र करैं वन राजैं॥
बरनै दीनदयाल हरिन बिहरैं सुख लूटैं।
पंगु भयो मृगराज आज नख रद के टूटैं॥ ८॥

गज-अन्योक्ति

तोरै मति तरु मूल तें फूलसहित हित नूर।
अरे निरंकुश द्विरद बद दुखद महामदपूर॥
दुखद महामदपूर लखै नहिं याकी सोभा।
फल दल भल सुखदानि सकल जग तातें लोभा॥
बरनै दीनदयाल प्रनय जो सब तें जोरै।
सो उपकारी मानि मीतता प्रीति न तोरै॥ ९॥

चन्द्र-अन्योक्ति

मैलो मृग धारे जगत नाम कलंकी जाग ।
तऊ कियो न मयंक तुम सरनागत को त्याग ॥
सरनागत को त्याग कियो नहिं ग्रसे राहु के ।
सिए हिए मैं रहो तजहु नहिं कटे काहु के ॥
बरनै दीनदयाल जाति मिस सो जस फैलो ।
हौ हरि को मन सही कहै खल पामर मैलो ॥ १० ॥

नदी-अन्योक्ति

बहु गुन तो मैं हैं धुनी अति पुनीत तव नीर ।
राखत यह औगुन बड़ो बक मराल इक तीर ॥
बक मराल इक तीर बड़ो छोटो नहिं जानति ।
सेत सेत सब एक नहीं गुन दोष पिछानति ॥
बरनै दीनदयाल चाल यह भली न है सुनु ।
जग में प्रगट बिलाहिं एक औगुन तें बहुगुनु ॥ १२ ॥

जलद-अन्योक्ति

भीषन ग्रीषमताप ते भयो झाँवरो छीन ।
है यह चातक हावरो अनुग अनु रावरो दीन ॥
अनुग रावरो दीन लीन आधीन तिहारे ।
कहै नाम बसु जाम रहै घनस्याम निहारे ॥
बरनै दीनदयाल पालिए लखि तप तीषन ।
सरी सरोवर सिंधु काहु इन माँगी भीष न ॥ १३ ॥

(अन्योक्ति-माला)

शब्दार्थ

२५ पृष्ठ

पीव—पति, ईश्वर

सिरजा—उत्पन्न किया

चकमक—एक प्रकार का पत्थर जिससे आग निकलती है।

अंतरा—भेद, फर्क

२६ पृष्ठ

अलख—अलक्ष्य, निराकार

अमी—अमृत

सैन—संकेत, इशारा

२७ पृष्ठ

खरतुआ—एक प्रकार की घास

कूर—दुष्ट

चौगान—एक खेल

बगूला—बवंडर

२८ पृष्ठ

कलस—घड़ा

हाट—दूकान

ढँढोरे—ढूंढ़ता है

२९ पृष्ठ

तुपक—तोप

३० पृष्ठ

पन—प्रतिज्ञा

रंच—थोड़ा

अवघट—कठिन, दुर्गम

मलया—मलयज, चंदन

भुवंग—साँप

नारी—स्त्री, नाड़ी

३१ पृष्ठ

अबुझालोग—अज्ञानी

अवधू—अवधूत, योगी

निवाज—कृपा करके

३२ पृष्ठ

रेंडा—एरंड

रूख—वृक्ष

पंगुल—लंगड़ा

ताड़ी—चाबी, कुंजी

अघ—पाप

सुरति—ध्यान

३३ पृष्ठ

अमल—नशा

दुचिताई—दुविधा, संशय

३४ पृष्ठ

डिंभ—आडम्बर

सरग—आकाश
अनहद—अनाहद, एक प्रकार का शब्द जो समाधिस्थ योगी को सुनाई देता है।

३५ पृष्ठ

अधर—आकाश
मँड़इया—झोपड़ी
कुफुल—ताला
पुरइन—कमल

३६ पृष्ठ

दियना—दीपक
भाँवर—परिक्रमा
बरिआई—बलपूर्वक।

३७ पृष्ठ

लेजर—रज्जु, रस्सी

३८ पृष्ठ

निरबानी—मुक्ति देनेवाला

४३ पृष्ठ

उपाधि—छल, कपट
ऋद्धि—विभूति, ऐश्वर्य
सिद्धि-अणिमादि आठ सिद्धियां
सारधी—सारग्राही बुद्धि द्वारा, विवेक बल से
उजागर—उज्ज्वल, शुद्ध
बैरागर—वैराग्यवान्
बिलात—नष्ट होती है।
विकारधी—कलुषता की बुद्धि
उदारधी—उदार बुद्धि वाला
घात—बैरभाव।

४४ पृष्ठ

विषाद—खेद
पषान—पाषाण, पत्थर
भृङ्ग—भ्रमर, भौंरा
सद्य—तत्काल।
प्यास—जिज्ञासा
बाट—रास्ता, मार्ग
कौड़ा—बड़ी कौड़ी, पैसा

४५ पृष्ठ

देषिधौं—देख तो सही।
आंष लगै—मर जाने पर
चपाकि दै—तुरंत, शीघ्र ही
लीलत—निगलता है।
भारौ—बड़ा

४६ पृष्ठ

वोर—तरफ
व्याल—सर्प

४७ पृष्ठ

नन्दन—पुत्र
बीर—भाई
सिंधौरा—सिन्दूर
जाम—एक पहर
जुग जाम—दो पहर

४८ पृष्ठ
कन—दाना, अन्न
बिललात—चिल्लाता
डायनि—डाकिनी, बहुत खाने वाली पिशाची
अघानी—तृप्त हुई
भांड—निर्लज्ज, वेहया
किधौं—क्या
भार—भाड़
४६ पृष्ठ
रनु—रण
जेर—आधीन
सुरापी—मदिरापी
कापी—(गाँठ) काटी
५० पृष्ठ
भंगार—तुच्छ पदार्थ
सुध—शुद्ध
हटकि—रोक कर
लटकि—बड़े चाव से
लोल—चंचल
तार तोरत—ध्यान में विघ्न डालता है
करम हीन—मंदभागी
५१ पृष्ठ
बिडाल—बिलाव
ढेढ—नीच पुरुष
भाँड—भाट
बटपार—ठग, डाकू
जेवरी—रस्सी
५२ पृष्ठ
अनावृत—व्यापक
घन नांमी—बहुत नाम वाला
षांमी—कमी, घाटा
ऊषर—ऊखल
दगली—अँगरखा
सूप—छाज
बिढोरा—गोबर का ढेर जो ऊपर से लीप दिया जाता है।
५३ पृष्ठ
रत—अनुरक्त
यत—नियम
पति नांहिं—प्रतिष्ठा नहीं
५४ पृष्ठ
काई—कुछ
रगत—रक्त
र—और
५५ पृष्ठ
उरझानौ—उलझ गया, रमगया
पयानौ—प्रयाण, गमन
५६ पृष्ठ
हुलरायौ—झुलाया
बार—द्वार

चंपै—दबाता था।
५७ पृष्ठ
नहिं तोलै—बराबर नहीं समझता था।
काम को—मतलब का
५८ पृष्ठ
कालबूत—घास, चिथड़े आदि
हुन्नर—हुनर, तरकीब
षंधक—खाई, गड्ढा
त्रिय—स्त्री, हथनी
कल ही—तरकीब से
५६ पृष्ठ
सिरपाव—सिर से पैर तक का पहनावा, सिरोपाव
पुसाला—खुशहाल, प्रसन्न
६० पृष्ठ
लोई—प्राप्त होगी
६७ पृष्ठ
अहेरै—शिकार के लिए
पाट-परधानी—पटरानी
ओपनिवारी—चमकने वाली
बानि—वर्ण
कसि—कसौटी पर कस कर
लोना—सुन्दर
आन—शपथ, कसम
आगरि—आगार, घर, खजाना

६८ पृष्ठ
बिख—विष
तमचूर—ताम्रचूड़, मुर्गा
धाय—धात्री, दाई
दामिनीवेग—बिजली की तरह तेज चलने वाली
आन—अन्य, और
बिसरामी—मनोरंजन की वस्तु
तिरिया—स्त्री
नागिनी—सर्पिणी
मकु—कदाचित्
तुरय—तुरग, घोड़ा
हरि—बंदर
मजारी—मार्जारी, बिल्ली
६६ पृष्ठ
कूट—कालकूट विष
राता—रक्त, लाल
बिरूधी—विरुद्ध
सरेखा—ज्ञानी, चतुर
रुहिर—रुधिर, खून
आयसु—आज्ञा
गहन—ग्रहण
बिरचि—अनुरक्त होकर
भुआ—रूई
७० पृष्ठ
परहेली—अवहेलना की।

गीवा—ग्रीवा, गर्दन
निरारे—पृथक, अलग
७१ पृष्ठ
किंगरी—सारंगी
लटा—शिथिल, दुर्बल
धँधारी—गोरखधंधा
अधारी—टेकनी
मुद्रा—कान में पहनने का कुंडल
उदपान—उदकपात्र, कमंडलु
पाँवरि—खड़ाऊँ
सैंते—संभालती है
साँटियाँ—डाँडी
कटकाई—दलबल के साथ चलने की तैयारी
अरकाना—सरदार
साँभर—सम्बल, कलेऊ
बेसाहा—सौदा, सामग्री
७२ पृष्ठ
साँठी—पूँजी
गुदर होइहि—हाजिर होइए।
सजग—सावधान।
अगमन—आगे से, पहले से
काथरि—गुदड़ी
कुरकुटा—मोटा अन्न
दर—दल, सेना
परिगह—परिजन
निआन—निदान, अन्त में
कजरीवन—कदली (केले का) वन
७३ पृष्ठ
पखरिहौं—धोऊँगी।
भँवै—इधर उधर घूमती।
अहिवात—सौभाग्य
तात—गरम
७४ पृष्ठ
जसोवै—यशोदा का विकृत रूप
बारा—बालक
जुझारा—योद्धा, वीर
ठटा—समूह
बीजु—बिजली
नीसाना—नगाड़ा
सेल—भाला
मैमंता—मदमत्त
सँकरे—संकट में
पतार—पाताल
७५ पृष्ठ
निसता—बिना सत्य का
उहै बार—उसी (ईश्वर) के द्वार पर
नियर—निकट
नवै न—नहीं झुकाता
धमारी—होली की क्रीड़ा
दगला—रूई का अँगरखा

चाँचरि—होली

८३ पृष्ठ

अब कै—इस बार

भव—संसार

अंबुनिधि—समुद्र

लहरि—लपट, झोंका

अनंग—कामवासना, कामदेव

मोट—गठरी

सिवार—शैवाल, पानी में फैलने वाली घास

पूरि रह्यौ—भरा रहा।

कुमत—बुरी सलाह

असत—बुरे, दुष्ट

८४ पृष्ठ

मदै—मद ही

मागध—भाट

मुहकम—मज़बूत

तारो—ताला

गारो—अभिमान

पखावज—मृदंग

फैंटा—कमरबन्द

काछि—स्वाँग रच कर

गारयौ—नष्ट कर दिया

ज्यौ—जीव, प्राण

चारयौ—चारों नेत्र ; दो बाहर के और दो भीतर के

ज्ञान नेत्र

८५ पृष्ठ

कुचील—मैला

अंक—गोद

धर—धरा, भूमि

नल—नाला

किरसि—जोत कर

द्विज—दाँत

मकरन्द—पुष्परस

८६ पृष्ठ

उबारयौ—बचाया

भीर—संकट

छिनक—एक क्षण में

रंगभूमि—सभा-मंडप

बिरद—बड़ाई

खेवट—नाव खेने वाला

नई—नई बात

डहकायौ—ठग गया।

गीध्यौ—लोभ में पड़ गया।

अवनि—पृथ्वी

८७ पृष्ठ

तूल—रुई

ताँवरो—मूर्च्छा

चौहटें—चौराहे में

अनत—अन्यत्र

छेरी—बकरी

पन—प्रण, प्रतिज्ञा
खरौ—चोखा
नार—नाला
सुरसरि—गंगा
८८ पृष्ठ
नौनहरामी—कृतघ्न
ग्रामी—गाँव का
सही—सहता रहा ।
हित—प्रेम
किरच—टुकड़ा
मही—मट्ठा, छाछ
ढरै—कृपा करे ।
गरै—नष्ट हो जाता है ।
रंकब—ग़रीब
८९ पृष्ठ
केहि रस—किस उपाय से
जरठ जरै—गर्भमें दुःख पाता है ।
फूली—प्रसन्न हुई ।
महर—गोप, नंद
किंकनी—करधनी
सुदेस—सुंदर
केहरि-नख—बघनखा
बज्र—हीरा
प्रवाल—मूंगा
९० पृष्ठ
अजिर—आँगन
नवनीत—मक्खन
बिरति—वैराग्य
अवगाहत—देखते हैं ।
प्रतिमनि—प्रतिमाओं को
कुलही—टोपी
चिकुर—बाल
बगराई—फैले हुए
लटकन—एक प्रकार का भूषण
सनि—शनि
असुरगुरु—शुक्र
देवगुरु—बृहस्पति
भौम—मंगल
९१ पृष्ठ
खंडित—टूटे-फूटे
जलपाई—बिना अर्थ की बात करना
जिनि—नहीं
क्यौंकि—उछल कर
बरज्यौं—रोकने पर
कत—क्यों
९२ पृष्ठ
बिरुझावत—मचलते हैं ।
बोधति—समझाती है ।
खिजायो—तंग किया ।
जायौ=उत्पन्न किया ।
चबाई—निन्दा करने वाला

हाऊ—एक कल्पित भयानक प्राणी

९३ पृष्ठ

सवेर—शीघ्र

कनियाँ—गोद में

दधि-दनियाँ—दही के देने में

नावत—गिरते हैं।

अँचमन लीन्हौं—मुँह धोया।

मधु—मधुर

ढिग—पास

कानि—लिहाज़

९४ पृष्ठ

बासन—बरतन

बानि—आदत

पानि—पाणि, हाथ

ख्याल—खेल

सीके पर—छीके पर

साँटि—छड़ी

अचेत—बिना सोचे समझे

दाँवरी—डोरी

तामस—क्रोध

९५ पृष्ठ

बेनु—बंशी

खौरि—तिलक

काछनी—कटिवस्त्र

सिरावत—शीतल करते हैं।

हौं—मैं

न पत्याहि—विश्वास नहीं

रिंगाइ—इधर उधर घुमाकर

९६ पृष्ठ

जो पै—यदि

बारेक—एक बार

लड़ैतो—प्यारा

परिधान—वस्त्र

सचु—सुख

पाती—पत्रिका

निमेष न खंडति—पलक नहीं गिराती हैं।

सुरति—याद

जोवति—देखती हैं।

पावस—वर्षा ऋतु

विदमान—विद्यमान

९७ पृष्ठ

हुतौ—था

स्वासा—प्राण

पुरवौमन—मन की इच्छा पूरी करो।

राँची—अनुरक्त

मूखी—दुखी हुई

पतूखी—दोना

घोष—अहीरों की बस्ती

संतत—सदा
९८ पृष्ठ
तातो—गरम
बूझति—पूछती हैं।
९९ पृष्ठ
गाँसी—व्यंग्य
बिहात—बीतते हैं।
सिसिर-हिमीहत—शिशिर ऋतु के पाले से मारे हुए
१०० पृष्ठ
तन—तरफ़
सजायौ—मिश्री आदि से युक्त
सिरात—बीतता था
बाँटि—पीसकर
छीजै—दुर्बल हो जाता है।
अलि-सुत—भौंरा
जल-सुत—कमल
संपुट—कोष
सारँग—हिरण
नाद—स्वर
१०७ पृष्ठ
निहोरत—विनती करते हैं।
चंद्रललाम—महादेव
परन—पर्ण, पत्ते
१०८ पृष्ठ
कुधर-कुमारिका—पार्वती
पेषन—देखने के लिए
बिलगु—बुरा
१०९ पृष्ठ
रावरो—आपका
फुर—सत्य
रौरेहो—आपको
जनेत—बरात
११० पृष्ठ
अजिन—चर्म
माहुर—विष
बिसिष—बाण
बरबर—असभ्य
१११ पृष्ठ
सकारे—सबेरे
जातक—बच्चा
आरि—हठ
११२ पृष्ठ
पनहीं—जूती
तिषंग—तरकश
तमाचीर—राक्षस
खोरि—गली
११३ पृष्ठ
बालधी—पूँछ
दवारि—वन की आग
निबुकि—छुटकारा पाकर
बुबुकारी देत—जोर से रोते हैं।

छोटे—बालक

११४ पृष्ठ

परिघ—गदा

सौंज—सामग्री

हवि—हवन की वस्तु

परावनो—भगदड़

११५ पृष्ठ

गच-काँच—पक्के फ़र्श में जड़ा हुआ काँच

सेन—बाज़

पवि पंजर—रक्षा के लिए वज्र

११६ पृष्ठ

ताँबे......पायो—मानो ताँबे से मढ़ी पीठ लेकर आया।

रवनि—रमणी, स्त्री

११७ पृष्ठ

निरस—नीरस, रूखा

बिसद—निर्मल, सफेद

रबिनंदिनि—यमुना

गोई—छिपी हुई

भूति—ऐश्वर्य

कुधातु—लोहा

११८ पृष्ठ

दव—वन की आग

कुदाउ—बुरा दाव, छल

लाहू—लाभ

११९ पृष्ठ

नतरु—नहीं तो

बादि=व्यर्थ

सुपासू=सुखप्रद

भाएँ=समझ में

सिहाहीं=प्रशंसा करते हैं।

१२१ पृष्ठ

तूनीरा=तरकश

दिआसे=मृगतृष्णा, मरीचिका

सरद-सर्वरी-शरदऋतुका चंद्रमा

१२२ पृष्ठ

बधूटी—स्त्रियाँ

रायराशि—धनराशि

छोहू—कृपा

१२७ पृष्ठ

सारी—मैना

निघटी—घट गई

मीचु—मृत्यु

तटी—समाधिस्थिति

गटी—गठरी

धूरजटी—महादेव

करहाटक—कमल की छतरी

हाटक—सोना

१२८ पृष्ठ

चक्रिन—सर्प

मृगमित्र—चन्द्रमा

औधि—अवधि
ज़रकंबर—दुशाला, कम्बल
जीव—बृहस्पति
१२६ पृष्ठ
राजप्रेषक—राजदूत
१३० पृष्ठ
देवदूषण—देवताओं का शत्रु
चिकारि—गरज कर
स्यों—सहित
सींव—सीमा
१३१ पृष्ठ
तूलहु—रूई भी
जराइ जरी—नग जटित
चेटक—धोखे का चमत्कार
१३२ पृष्ठ
नराच—बाण
शिवा—स्यारनी, गीदड़ी
१३३ पृष्ठ
सका—सक्का, भिश्ती
शिखी—अग्नि
घाघ—इन्द्रजाली
भगर—जादू, एक प्रकारका खेल
छिप्र—शीघ्र
१३४ पृष्ठ
पुरैन—कमल
अक्षरिपु—हनुमान

१४१ पृष्ठ
अनाकनी—अनसुनी
गुहारि—पुकार
वारनु—हाथी
तरयौना—कर्णभूषण; अधम
नाक-नासिका; स्वर्ग
बेसरि—नाक का भूषण; नीच
बीधे—उलझे फँसे
गीधे—परिचित
१४२ पृष्ठ
पीनसवारैं—पीनस रोगवाले ने
तूठे—प्रसन्न
जगबाइ—संसार की हवा
धरक—डर
१४३ पृष्ठ
जातरूप—सोना
सवादिलु—स्वादिष्ट
सवारु—प्रातःकाल
१४४ पृष्ठ
सियरानु—शीतल हो गया
ससहरि—डरकर
मोषु—मोक्ष
पगारु—खाई, गड्ढा
१४५ पृष्ठ
करौत—करवट
लीला—नीले रंग का गोदना

बहकि—उमंग में आकर
तरौंस को—किनारे का
खरौंहों—खारा
पृष्ठ १४६
बरु—चाहे
मोरचा—जंग
अरक—आक सूर्य
दुराज—दो राजाओं का राज्य
पतवारी—पतवार
बरिया—अवसर
करिया—केवट कर्णधार
१४८ पृष्ठ
अकस—ईर्ष्या
सत—सौ
सम्रत्यौ—स्मृति धर्मशास्त्र
निसक—दुर्बल
सराधपखु—श्राद्धपक्ष
वाइसु—कौवा
अपतु—पत्ररहित; मान रहित
१४९ पृष्ठ
भखु—भक्ष्य
सपर—पक्षसहित
परिपारि—मर्यादा
बृजभानुजा—राधिका; बैल की
बहिन
हलधर—बलराम; बैल

कुंज—मंगल
१५३ पृष्ठ
करन-बिजना—कानरूपी पंखा
कोकनद—लाल कमल
जुड़ाइए—शीतल कीजिए
द्विरदमुख—गणेश
कपर्दिनी—पार्वती, भवानी
विहंडिनी—मारनेवाली
१५४ पृष्ठ
कुन्द—एक सफेद फूल
कृसानु—आग
अम्भ—पानी,समुद्र
वारिवाह—बादल
वितुण्ड—हाथी
तम अंस—अंधकार का समूह
थरि—स्थली, स्थान
मठी—माँद
हटक्यो—रोका
१५५ पृष्ठ
पारावार—समुद्र
ऐल—प्रवाह
कोट किले
मघवा—इन्द्र
ढीले—शिथिल, उदासीन
चपला—बिजली
बैरष—झंडा

दराज—बड़े

१५६ पृष्ठ

सनाह—कवच

ओत—आराम

अरिगोत—शत्रुकुल

वेसम्हार—असंख्य

अयाने अनजान

वासव—इन्द्र

मसनन्द—गद्दी

१५७ पृष्ठ

गुन—गुण; रस्सी

रस—प्रेम

कंत—पति

जामिनि—रात्रि

दरीन—गुफाओं में

नंका—पार किया

तुरीगन—घोड़ों का समूह

१५८ पृष्ठ

धरम—धर्म; धर्मसुत

पैज—प्रतिज्ञा

लाखभौन—लाक्षागृह

दाशरथी—राम

लंक—लंका; कमर

१५६ पृष्ठ

मुहीम—चढ़ाई

दीनहिं—मजहब को

१६० पृष्ठ

दारि—दलदल कर

संगर—युद्ध

हुती—थी

छिति—क्षिति, पृथ्वी

जड़ो—जड़

बगूरे—बगूले, बवन्डर

अमाप—बेहद

कलावत—गायक

१६१ पृष्ठ

घनसार—कपूर

सारद—सरस्वती

छीरधि—दूध का समुद्र

हेरत—ढूँढ़ता है।

इन्द्र को अनुज—विष्णु

गिरीस—महादेव

१६२ पृष्ठ

बूत-शक्ति

डंडि—द्वंद, झगड़ा

बाजिराज—श्रेष्ठ घोड़े

पायहीन—पाँव रहित

बिहद—बेहद

गैवरन—श्रेष्ठ हाथियों

खैल-भैल—खलबली

तरनि—सूर्य

१६३ पृष्ठ

भूरि—बहुत
जुत्थ—झुण्ड
इभ—हाथी

१६४ पृष्ठ

कमान—तोप
जोट—समूह
दावा—आतंक, अधिकार
नाग जूह—हाथियों का समूह।

१६६ पृष्ठ

निगम—वेद
आगम—शास्त्र
धौरहर—महल
सौध—महल
अवदात—स्वच्छ, निर्मल
जरकस—बहुमूल्य

१७० पृष्ठ

ओक—घर
दान कृपान पढ़ावै—युद्ध करना सिखलाता है।

१७१ पृष्ठ

पानिप—पानी, तेज
चंडकर—सूर्य
धरमसुत—युधिष्ठिर
पन—प्रण

१७२ पृष्ठ

महीरुह—वृक्ष
गैरिक शृंग—गेरू की लाल चोटियां
संचि—संचित करके
लाजति—लजाति
भटू—सखी
कुलकानि—कुल की मर्यादा
गुच्छनि—फूल के गुच्छे
अवतंस—भूषण, मुकुट

१७३ पृष्ठ

नेवर—नूपुर, पायजेब
सुही—हलके कासनी रंग की
तम तोम—घोर अंधकार
धरनि—घड़ों के।

१७४ पृष्ठ

तिमिर—अंधकार
नेह—प्रेम, घी
नखतावलि—तारों की पंक्ति
अटा—अट्टालिका
अगरु—एक सुगंधित लकड़ी
बोध—ज्ञान

१७५ पृष्ठ

त्रिभंगी—कृष्ण
निरवेद—वैराग्य
जीवन—जल, प्राण

श्रौन—श्रवण, कान

१७६ पृष्ठ

कोक—चकवा

जलधिसुत—चन्द्रमा

लकुटिया—लाठी

१८३ पृष्ठ

त्रिगुद्ध सुद्ध—तीनों तापों से रहित

बुझहिं—समझते हैं।

झंकहिं—खीजते हैं।

बयउ—बोया

बग्ग—वर्ग, समूह

झुमड़े—झूमने लगे।

रोसन—रोष, उत्साह

१८४ पृष्ठ

नाका—स्वर्ग

सलाका—सलाई

अभिरि परे—भिड़ गए

अत्रन—अस्त्रों

बंगे—वक्र, टेढ़े

छक्कर—दाँव पेच

बमकि—बड़े वेग से

खंजर—तलवार

सनि—घुस कर

हिलगना—लटकना

गज्जैं—घुसेड़ देते हैं।

नव्जैं—नसें

रूरे—सुन्दर

हक्का—हुंकार

ढक्का—धक्का

उताले—उतावले

ताला—छाती की रक्षा करने के लिए लोहे का तवा

सूटैं—फेरते हैं

हूटैं—पीछे हटते हैं।

डुक्का—घूँसा

१८५ पृष्ठ

चिलता, झिलम—कवच

विलमैं—विलंब करते हैं।

टक्के—देखते हुए

झमके—झमझम शब्द करतेहुए

तमके—जोश में आकर

तरकना—उछलना

दस्ताने करि—तलवार फेर कर

करि कलमैं—काटकर

मगरबी, जुनब्बा—तलवारें

फतूह—विजय

१८६ पृष्ठ

छत्र—राजछत्र

छेम—कल्याण

प्रभाकर—सूर्य

काँची—कच्ची

उमरि दराज—बड़ी आयु
जाहिरै—प्रत्यक्ष होती है ।
उमहै—लहराती हुई बहती है ।
बेनी—चोटी
सेनी—श्रेणी, धारा
१८७ पृष्ठ
किलकंत—किलकता है ।
बगरो—फैला हुआ
जूरें—जूड़ा
१८८ पृष्ठ
सारँगपानि—विष्णु, राम
मुचंड—स्थूल
महामतवारिनि—मदमत्तहथी
पेखनो—तमाशा, खेल
ती—स्त्री
१८९ पृष्ठ
फैल—विस्तार
गाफिल—असावधान
वृषपति—महादेव
१९० पृष्ठ
सुरापी—मद्यपायी, शराबी
अमल—प्रभुत्व, शासन
१९५ पृष्ठ
मंजीर—नूपुर, पायजेब
भानुजा—यमुना
कंदर्प—कामदेव
तड़ित—बिजली
१९६ पृष्ठ
पिछोरी—दुपट्टा, चादर
१९७ पृष्ठ
तकसीर—गलती, अपराध
१९८ पृष्ठ
केहरि—सिंह
संदोह—समूह
घ्रान—नाक
गुंजा—घूँघची, रत्ती
१९९ पृष्ठ
परमागेह—शोभा का घर
उष—ऊख, ईख
दव—आग
२०० पृष्ठ
झंपिम—ढका हुआ
छार—राख
रद—दाँत
अरनी—अग्नि-मंथन काष्ठ
गुपुत—गुप्त, छिपी हुई
हुतास—आग
घनस्याम—काला बादल; कृष्ण
२०१ पृष्ठ
माधुरी—मिठास, सौन्दर्य
मंरद—पराग, पुष्परज
क्रमेलक—ऊँट

सिलीमुख—भौंरा

तटिनी—नदी

२०२ पृष्ठ

सुकन—तोता

२०३ पृष्ठ

सेयो—सेवन किया।

मीतता—मित्रता

२०४ पृष्ठ

मयंक—चन्द्रमा।

धुनी—नदी।

झाँवर—सुस्त, मुरझाया हुआ।